मुद्रा प्रयोग एक अनुसंधान

संस्कृति के आलोक में

सम्बोधिका

पूज्या प्रवर्त्तिनी श्री सज्जन श्रीजी म.सा.
परम विदुषी शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

श्री जिनदत्तसूरि अजमेर दादाबाड़ी

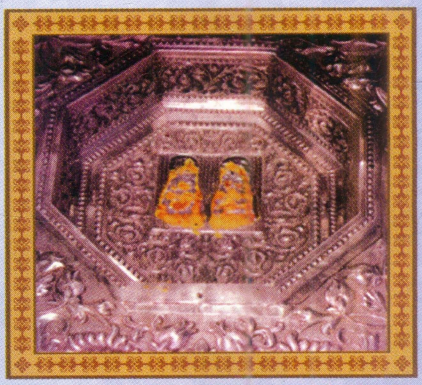

श्री मणिधारी जिनचन्द्रसूरि दादाबाड़ी (दिल्ली)

श्री जिनकुशलसूरि मालपुरा दादाबाड़ी (जयपुर)

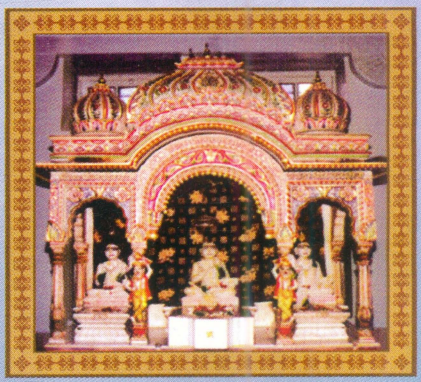

श्री जिनचन्द्रसूरि बिलाडा दादाबाड़ी (जोधपुर)

मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-15

2012-13

R.J. 241 / 2007

शोधार्थी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

निर्देशक

डॉ. सागरमल जैन

जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय

लाडनूं-341306 (राज.)

मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में

जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन विषय पर

(डी. लिट् उपाधि हेतु स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

खण्ड-15

स्वप्न शिल्पी

आगम मर्मज्ञा प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.

संयम श्रेष्ठा पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.

मूर्त्त शिल्पी

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्री

(विधि प्रभा)

शोध शिल्पी

डॉ. सागरमल जैन

मुद्रा योग एक अनुसंधान
संस्कृति के आलोक में

कृपा पुंज : पूज्य आचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागर सूरीश्वरजी म.सा.
मंगल पुंज : पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा.
आनन्द पुंज : आगमज्योति प्रवर्तिनी महोदया पूज्या सज्जन श्रीजी म.सा.
प्रेरणा पुंज : पूज्य गुरुवर्य्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा.
वात्सल्य पुंज : गुर्वाज्ञा निमग्ना पूज्य प्रियदर्शना श्रीजी म.सा.
स्नेह पुंज : पूज्य दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य सम्यक्दर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य शुभदर्शना श्रीजी म.सा., पूज्य मुदितप्रज्ञाश्रीजी म.सा., पूज्य शीलगुणाश्रीजी म.सा., सुयोग्या कनकप्रभाजी, सुयोग्या संयमप्रज्ञाजी आदि भगिनी मण्डल
शोधकर्त्री : साध्वी सौम्यगुणाश्री (विधिप्रभा)
ज्ञान वृष्टि : डॉ. सागरमल जैन
प्रकाशक : • प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड, शाजापुर-465001
email : sagarmal.jain@gmail.com
• सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड, पालीताणा-364270
प्रथम संस्करण : सन् 2014
प्रतियाँ : 1000
सहयोग राशि : ₹ 50.00
(पुनः प्रकाशनार्थ)
कम्पोज : विमल चन्द्र मिश्र, वाराणसी
कॅवर सेटिंग : शम्भू भट्टाचार्य, कोलकाता
मुद्रक : Antartica Press, Kolkata
ISBN : 978-81-910801-6-2 (XV)

© All rights reserved by Sajjan Mani Granthmala.

प्राप्ति स्थान

1. श्री सज्जनमणि ग्रन्थमाला प्रकाशन
बाबू माधवलाल धर्मशाला, तलेटी रोड,
पो. पालीताणा-364270 (सौराष्ट्र)
फोन : 02848-253701

2. श्री कान्तिलालजी मुकीम
श्री जिनरंगसूरि पौशाल, आड़ी बांस
तल्ला गली, 31/A, पो. कोलकाता-7
मो. 98300-14736

3. श्री भाईसा साहित्य प्रकाशन
M.V. Building, Ist Floor
Hanuman Road, PO : VAPI
Dist. : Valsad-396191 (Gujrat)
मो. 98255-09596

4. पार्श्वनाथ विद्यापीठ
I.T.I. रोड, करौंदी वाराणसी-5 (यू.पी.)
मो. 09450546617

5. डॉ. सागरमलजी जैन
प्राच्य विद्यापीठ, दुपाडा रोड
पो. शाजापुर-465001 (म.प्र.)
मो. 94248-76545
फोन : 07364-222218

6. श्री आदिनाथ जैन श्वेताम्बर
तीर्थ, कैवल्यधाम
पो. कुम्हारी-490042
जिला– दुर्ग (छ.ग.)
मो. 98271-44296
फोन : 07821-247225

7. श्री धर्मनाथ जैन मन्दिर
84, अमन कोविल स्ट्रीट
कोण्डी थोप, पो. चेन्नई-79 (T.N.)
फोन : 25207936,
044-25207875

8. श्री जिनकुशलसूरि जैन दादावाडी,
महावीर नगर, केम्प रोड
पो. मालेगाँव
जिला- नासिक (महा.)
मो. 9422270223

9. श्री सुनीलजी बोथरा
टूल्स एण्ड हार्डवेयर,
संजय गांधी चौक, स्टेशन रोड
पो. रायपुर (छ.ग.)
फोन : 94252-06183

10. श्री पदमचन्द चौधरी
शिवजीराम भवन, M.S.B. का रास्ता,
जौहरी बाजार
पो. जयपुर-302003
मो. 9414075821, 9887390000

11. श्री विजयराजजी डोसी
जिनकुशल सूरि दादाबाड़ी
89/90 गोविंदप्पा रोड
बसवनगुडी, पो. बैंगलोर (कर्ना.)
मो. 093437-31869

संपर्क सूत्र

श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत
9331032777
श्री रिखबचन्दजी झाड़चूर
9820022641
श्री नवीनजी झाड़चूर
9323105863
श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख
8719950000
श्री जिनेन्द्र बैद
9835564040
श्री पन्नाचन्दजी दूगड़
9831105908

सेवार्पण

जिनका जीवन समर्पित है

मानव मात्र के कल्याण के लिए...

जिनका अनुभव ज्ञान उपलब्ध है

शक्ति केन्द्रों के जागरण के लिए...

जिनकी साधना पद्धति सुलभ है

जन सामान्य के आचरण के लिए...

उन सभी साधकों की

त्रियोग पूर्ण मंगलकारी उत्कट साधना को

श्रद्धान्वित भावेन

सादर समर्पित

सज्जन हृदयगत

No Time Busy Life की आधुनिक संस्कृति में
हर कोई चाहता है...
शारीरिक स्वस्थता पर भोजन में नहीं पौष्टिकता
मुखमंडल की सुंदरता पर विचारों में नहीं दिव्यता
वैचारिक स्थिरता पर जीवन में नहीं व्यवस्था
आज चारों तरफ फैल रहा है...
कदम-कदम पर यांत्रिक एवं वैचारिक प्रदूषण
शक्ति प्रदर्शन के लिए हो रहा है परमाणु परीक्षण
प्रगति के नाम पर हो रहा है अपनों से ही Competition
चाहे घर हो या Office
ठेला हो या उड़न खटोला
पाठशाला हो या पाकशाला
व्यापार हो या व्यवहार
हर क्षेत्र में अपेक्षित है साहस और सफलता
शारीरिक निरोगता, मानसिक स्वस्थता, वैचारिक शांतता
आत्मिक स्थिरता, पारिवारिक सकता, सामाजिक शालीनता
वाणी में मृदुता, भावों में निर्मलता, जीवन में धैर्यता
जिसका सरलतम उपाय बताया है
सभी धार्मिक ग्रन्थों ने
वैज्ञानिक अनुसंधानों ने
Fitness संस्थानों ने
उसे आपके समक्ष रखने का
एक हार्दिक प्रयास....

हार्दिक अनुमोदन

शासन प्रभाविका, संयम-तप-जप की अप्रतिम साधिका, सज्जनमणि प. पू. गुरुवर्य्या श्री शशिप्रभा श्रीजी म.सा., पू. प्रियदर्शना श्रीजी म.सा., पू. दिव्य दर्शना श्रीजी म.सा., पू. सौम्य गुणा श्रीजी म.सा., पू. संवेग प्रज्ञा श्रीजी म.सा. आदि ठाणा ५, सन् २००८ के ऐतिहासिक वर्षावास के उपलक्ष्य में

श्री खरतरगच्छ संघ, जयपुर के ज्ञान खाता एवं बीकानेर हॉल मुंबई निवासी **धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी नाहटा** की पुण्य स्मृति में

धर्मपत्नी श्रीमती सुधाजी नाहटा

पुत्री

मनीषा–अरविन्द सुराणा, मृणाल–विनोद कोचर, सोनाली–दीक्षित दत्ता, रोहिणी–किशोर

सेठिया परिवार

सम्पादकीय

मुद्रा विज्ञान पंच महाभूतों पर आश्रित सबसे प्राचीन एवं त्रिकाल प्रासंगिक महाविज्ञान है। भारतीय ऋषि-महर्षियों की वैज्ञानिकता एवं विलक्षणता का ज्वलंत प्रमाण है। ध्यान, आसन, प्राणायाम आदि प्राकृतिक योग साधनाएँ सम्पूर्ण विश्व में भारतीय संस्कृति की ही देन है। मुद्रा भी इन्हीं योग साधनाओं का एक प्रकार है।

मुद्रा अर्थात Actin या अंग संचालन की एक विशेष क्रिया जिसके द्वारा हाव-भाव प्रदर्शित किए जाते हैं। जब से इस सृष्टि में जीव हैं तभी से मुद्रा विज्ञान का भी अस्तित्व है। वाणी से पहले भाव अभिव्यक्ति का साधन मुद्रा ही बनती है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि उसके अन्त:करण में जैसे भाव होते हैं वैसी ही अभिव्यक्ति उसके मन, वचन और काया से होने लगती है। उदा० जब हमें किसी पर स्नेह आ रहा हो तो सहजतया मस्तक पर हाथ चला जाता है। क्रोध आ रहा हो तो आँखे लाल हो जाती है एवं शरीर तन जाता है। अभिमान का भाव आने पर कन्धे तन जाते हैं। पूर्व काल में चित्र एवं सांकेतिक भाषा का प्रयोग एक प्रकार से मुद्रा योग का ही रूप था। उबासी आने पर चुटकी बजाने के पीछे मुद्रा प्रयोग का एक बहुत बड़ा रहस्य छुपा हुआ था। जब भी उबासी आदि लेते हुए जबड़ा फँस जाए तो अंगूठे और मध्यमा अंगुली द्वारा मुख के आगे चुटकी बजाने से जबड़ा शीघ्र ही ठीक हो जाता है।

मुद्रा मानव के शरीर रूपी यन्त्र की नियन्त्रक तालिकाएँ (Switch) हैं। इन तालिकाओं के द्वारा मनुष्य के शरीर में महत्त्वपूर्ण तात्विक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यत्मिक एवं शारीरिक परिवर्तन बिना किसी सहायता के सरलता से लाए जा सकते हैं। मुद्रा प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि किसी भी वर्ग, आयु, लिंग के लोगों द्वारा सहजता पूर्वक सीखी जा सकती है। इसके लिए किसी विशिष्ट सामग्री, सुविधा या वातावरण की आवश्यकता

नहीं, व्यक्ति जब चाहे इनका तत्काल प्रयोग कर सकता है। आज रोगों की बढ़ती संख्या तथा Doctor एवं दवाईयों का खर्च आम आदमी के लिए बहुत बड़ी समस्या है। इन परिस्थितियों में मुद्रा प्रयोग एक ब्रह्मास्त्र है।

मुद्रा निर्माण में मुख्य सहयोगी अंग है हाथ। प्रकृति ने जल, अग्नि, वायु आदि पाँचों तत्त्वों को हमारे हाथ में समाहित किया है। मुद्रा प्रयोग के द्वारा इन तत्त्वों का संतुलन किया जाता है।

आध्यात्मिक जगत के उत्थान में भी मुद्रा प्रयोग एक सम्यक मार्ग है। आन्तरिक भाव जगत एवं चक्र जागरण में मुद्रा प्रयोग संजीवनी औषधि के रूप में कार्य करता है।

दैविक साधना अथवा देवताओं को आमंत्रित करते हुए उन्हें प्रसन्न करने आदि में भी मुद्रा प्रयोग प्राचीन काल से देखा जाता है। प्राय: जितने भी धर्म सम्प्रदाय हैं उनमें कुछ मुद्राओं का प्रयोग उनके उत्पत्ति काल से ही प्रचलित है। प्रार्थना आदि के लिए सभी के द्वारा कुछ विशिष्ट मुद्राएँ धारण की जाती है। इस्लाम धर्म में नमाज अदा करते हुए ईसाई लोगों के द्वारा प्रार्थना करते हुए कुछ विशिष्ट मुद्राएँ प्रयोग में ली जाती है। वैदिक परम्परा में देवोपासना से सम्बन्धित एवं बौद्ध परम्परा में भगवान बुद्ध से सम्बन्धित मुद्राएँ विश्व प्रसिद्ध है।

यदि जैन साहित्य का अवलोकन करें तो आगम साहित्य में कहीं-कहीं पर कुछ विशिष्ट मुद्राओं का आलेख प्राप्त होता है। जैसे प्रतिक्रमण सम्बन्धी मुद्राओं का उल्लेख आवश्यक सूत्र में तो गोदुहिकासन, खड्गासन आदि का वर्णन भगवान महावीर की साधना को लक्षित करके आचारांग सूत्र में प्राप्त होता है। मध्यकालीन साहित्य की अपेक्षा विविध प्रतिष्ठाकल्प, विधिमार्गप्रपा, आचारदिनकर आदि ग्रन्थ इस विषय में द्रष्टव्य हैं।

साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने विविध-विधानों में मुद्राओं के महत्व को देखते हुए आद्योपरान्त उपलब्ध मुद्राओं का सचित्र वर्णन करते हुए उनके लाभ आदि की प्रामाणिक चर्चा की है। जैन मुद्राओं के साथ नाट्य, बौद्ध, हिन्दू, यौगिक एवं आधुनिक चिकित्सा सम्बन्धी मुद्राओं का वर्णन करके इस कृति को विश्व उपयोगी बनाया है। मुद्राओं का सचित्र वर्णन उसकी प्रयोग विधि

को और अधिक सहज एवं सरल बनाएगा। सहस्राधिक मुद्राओं का विशद एवं प्रामाणिक यह संकलन विश्व वंदनीय है। प्रथम बार इतनी मुद्राओं को एक साथ प्रस्तुत किया जा रहा है।

साध्वीजी के इस विश्वस्तरीय योगदान के लिए सदियों तक उन्हें याद किया जाएगा। यह कार्य जिन धर्म को विश्व के कोने-कोने में पहुँचाएगा। मैं सौम्यगुणाश्रीजी के इस कार्य की अंतरमन से सराहना करता हूँ। वे इसी निष्ठा एवं लगन के साथ श्रुत उपासना में संलग्न रहें एवं जिनशासन के श्रुत भण्डार का वर्धन करें यही हार्दिक अभ्यर्थना है।

डॉ. सागरमल जैन
प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर

आशीर्वचन

आज मन अत्यन्त आनंदित है। जिनशासन की बगिया को महकाने एवं उसे विविध रंग-बिरंगे पुष्पों से सुरभित करने का जो स्वप्न हर आचार्य देखा करता है आज वह स्वप्न पूर्णाहुति की सीमा पर पहुँच गया है। खरतरगच्छ की छोटी सी फुलवारी का एक सुविकसित सुयोग्य पुष्प है साध्वी सौम्यगुणाजी, जिसकी महक से आज सम्पूर्ण जगत सुगन्धित हो रहा है।

साध्वीजी के कृतित्व ने साध्वी समाज के योगदान को चिरस्मृत कर दिया है। आर्या चन्दनबाला से लेकर अब तक महावीर के शासन को प्रगतिशील रखने में साध्वी समुदाय का विशेष सहयोग रहा है।

विदुषी साध्वी सौम्यगुणाजी की अध्ययन रसिकता, ज्ञान प्रौढ़ता एवं श्रुत तल्लीनता से जैन समाज अक्षरशः परिचित है। आज वर्षों का दीर्घ परिश्रम जैन समाज के समक्ष 23 खण्डों के रूप में प्रस्तुत हो रहा है।

साध्वीजी ने जैन विधि-विधान के विविध पक्षों को भिन्न-भिन्न अपेक्षाओं से उद्घाटित कर इसकी त्रैकालिक प्रासंगिकता को सुसिद्ध किया है। इन्होंने श्रावक एवं साधु के लिए आचरणीय अनेक विधि-विधानों का ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, समीक्षात्मक, तुलनात्मक स्वरूप प्रस्तुत करते हुए निष्पक्ष दृष्टि से विविध परम्पराओं में प्राप्त इसके स्वरूप को भी स्पष्ट किया है।

साध्वीजी इसी प्रकार जैन श्रुत साहित्य को अपनी कृतियों से रोशन करती रहे एवं अपने ज्ञान गांभीर्य का रसास्वादन सम्पूर्ण जैन समाज को करवाती रहे, यही कामना करता हूँ। अन्य साध्वी मण्डल इनसे प्रेरणा प्राप्त कर अपनी अतुल क्षमता से संघ-समाज को लाभान्वित करें एवं जैन साहित्य की अनुद्घाटित परतों को खोलने का प्रयत्न करें, जिससे आने वाली भावी पीढ़ी जैनागमों के रहस्यों का रसास्वादन कर पाएं। इसी के साथ धर्म से विमुख एवं विश्रृंखलित होता जैन समाज विधि-विधानों के महत्त्व को समझ पाए तथा वर्तमान में फैल रही भ्रान्त

मान्यताएँ एवं आडंबर सम्यक दिशा को प्राप्त कर सकें। पुनश्च मैं साध्वीजी को उनके प्रयासों के लिए साधुवाद देते हुए यह मंगल कामना करता हूँ कि वे इसी प्रकार साहित्य उत्कर्ष के मार्ग पर अग्रसर रहें एवं साहित्यान्वेषियों की प्रेरणा बनें।

आचार्य कैलास सागर सूरि
नाकोड़ा तीर्थ

हर क्रिया की अपनी एक विधि होती है। विधि की उपस्थिति व्यक्ति को मर्यादा भी देती है और उस क्रिया के प्रति संकल्प-बद्ध रहते हुए पुरुषार्थ करने की प्रेरणा भी। यही कारण है कि जिन शासन में हर क्रिया की अपनी एक स्वतंत्र विधि है।

प्राचीन ग्रन्थों में वर्णन उपलब्ध होता है कि भरत महाराजा ने हर श्रावक के गले में सम्यक दर्शन,सम्यक ज्ञान और सम्यक चारित्र रूप त्रिरत्नों की जनोई धारण करवाई थी। कालान्तर में जैन श्रावकों में यह परम्परा विलुप्त हो गई। दिगम्बर श्रावकों में आज भी यह परम्परा गतिमान है।

जिस प्रकार ब्राह्मणों में सौलह संस्कारों की विधि प्रचलित है। ठीक उसी प्रकार जैन ग्रन्थों में भी सौलह संस्कारों की विधि का उल्लेख है। आचार्य श्री वर्धमानसूरि खरतरगच्छ की रूद्रपल्लीय शाखा में हुए पन्द्रहवीं-सौलहवीं शताब्दी के विद्वान आचार्य थे। आचारदिनकर नामक ग्रन्थ में इन सौलह संस्कारों का विस्तृत निरूपण किया गया है। हालांकि गहन अध्ययन करने पर मालूम होता है कि आचार्य श्री वर्धमानसूरि पर तत्कालीन ब्राह्मण विधियों का पर्याप्त प्रभाव था, किन्तु स्वतंत्र विधि-ग्रन्थ के हिसाब से उनका यह ग्रन्थ अद्भुत एवं मौलिक है।

साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन गृहस्थ के व्रत ग्रहण संबंधी विधि विधानों पर तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन करके प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। यह बहुत ही उपयोगी ग्रन्थ साबित होगा, इसमें कोई शंका नहीं है। साध्वी सौम्यगुणाजी सामाजिक दायित्वों में व्यस्त होने पर भी चिंतनशील एवं पुरुषार्थशील हैं। कुछ वर्ष पूर्व मैं

विधिमार्गप्रपा नामक ग्रन्थ पर शोध प्रबन्ध प्रस्तुत कर अपनी विद्वत्ता की अनूठी छाप समाज पर छोड़ चुकी हैं।

मैं हार्दिक भावना करता हूँ कि साध्वीजी की अध्ययनशीलता लगातार बढ़ती रहे और वे शासन एवं गच्छ की सेवा में ऐसे रत्न उपस्थित करती रहें।

उपाध्याय श्री मणिप्रभसागर

किसी भी धर्म दर्शन में उपासनाओं का विधान अवश्यमेव होता है। विविध भारतीय धर्म-दर्शनों में आध्यात्मिक उत्कर्ष हेतु अनेक प्रकार से उपासनाएँ बतलाई गई हैं। जीव मात्र के कल्याण की शुभ कामना करने वाले हमारे पूज्य ऋषि मुनियों द्वारा शील-तप-जप आदि अनेक धर्म आराधनाओं का विधान किया गया है।

प्रत्येक उपासना का विधि-क्रम अलग-अलग होता है। साध्वीजी ने जैन विधि विधानों का इतिहास और तत्सम्बन्धी वैविध्यपूर्ण जानकारियाँ इस ग्रन्थ में दी है। ज्ञान उपासिका साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी ने खूब मेहनत करके इसका सुन्दर संयोजन किया है।

भव्य जीवों को अपने योग्य विधि-विधानों के बारे में बहुत-सी जानकारियाँ इस ग्रन्थ के द्वारा प्राप्त हो सकती है।

मैं ज्ञान निमग्ना साध्वी श्री सौम्यगुणा श्रीजी को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि इन्होंने चतुर्विध संघ के लिए उपयोगी सामग्री से युक्त ग्रन्थों का संपादन किया है।

मैं कामना करता हूँ कि इसके माध्यम से अनेक ज्ञानपिपासु अपना इच्छित लाभ प्राप्त करेंगे।

आचार्य पद्मसागर सूरि

विनयाद्यनेक गुणगण गरीमायमाना विदुषी साध्वी श्री शशिप्रभा श्रीजी एवं सौम्यगुणा श्रीजी आदि सपरिवार सादर अनुवन्दना सुखशाता के साथ।

आप शाता में होंगी। आपकी संयम यात्रा के साथ ज्ञान यात्रा अविरत चल रही होगी।

आप जैन विधि विधानों के विषय में शोध प्रबंध लिख रहे हैं यह जानकर प्रसन्नता हुई।

ज्ञान का मार्ग अनंत है। इसमें ज्ञानियों के तात्पर्यार्थ के साथ प्रामाणिकता पूर्ण व्यवहार होना आवश्यक रहेगा।

आप इस कार्य में सुंदर कार्य करके ज्ञानोपासना द्वारा स्वश्रेय प्राप्त करें ऐसी शासन देव से प्रार्थना है।

आचार्य राजशेखर सूरि
भद्रावती तीर्थ

महत्तरा श्रमणीवर्या श्री शशिप्रभाश्री जी
योग अनुवंदना!

आपके द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त हुआ। इसी के साथ 'शोध प्रबन्ध सार' को देखकर ज्ञात हुआ कि आपकी शिष्या साध्वी सौम्यगुणा श्री द्वारा किया गया बृहदस्तरीय शोध कार्य जैन समाज एवं श्रमण-श्रमणी वर्ग हेतु उपयोगी जानकारी का कारण बनेगा।

आपका प्रयास सराहनीय है।

श्रुत भक्ति एवं ज्ञानाराधना स्वपर के आत्म कल्याण का कारण बने यही शुभाशीर्वाद।

आचार्य रत्नाकरसूरि

जो कर रहे स्व-पर उपकार
अन्तर्हृदय से उनको अमृत उद्गार

मानव जीवन का प्रासाद विविधता की बहुविध पृष्ठ भूमियों पर आधृत है। यह न तो सरल सीधा राजमार्ग (Straight like highway) है न पर्वत का सीधा चढ़ाव (ascent) न घाटी का उतार (descent) है अपितु यह सागर की लहर (sea-wave) के समान गतिशील और उतार-चढ़ाव से युक्त है। उसके जीवन की गति सदैव एक जैसी नहीं रहती।

कभी चढ़ाव (Ups) आते हैं तो कभी उतार (Downs) और कभी कोई अवरोध (Speed Breaker) आ जाता है तो कभी कोई (trun) भी आ जाता है। कुछ अवरोध और मोड़ तो इतने खतरनाक (sharp) और प्रबल होते हैं कि मानव की गति-प्रगति और सन्मति लड़खड़ा जाती है, रुक जाती है इन बदलती हुई परिस्थितियों के साथ अनुकूल समायोजन स्थापित करने के लिए जैन दर्शन के आप्त मनीषियों ने प्रमुखतः दो प्रकार के विधि-विधानों का उल्लेख किया है– 1. बाह्य विधि-विधान 2. आन्तरिक विधि-विधान।

बाह्य विधि-विधान के मुख्यतः चार भेद हैं– 1. जातीय विधि-विधान 2. सामाजिक विधि-विधान 3. वैधानिक विधि-विधान 4. धार्मिक विधि-विधान।

1. जातीय विधि-विधान– जाति की समुत्कर्षता के लिए अपनी-अपनी जाति में एक मुखिया या प्रमुख होता है जिसके आदेश को स्वीकार करना प्रत्येक सदस्य के लिए अनिवार्य है। मुखिया नैतिक जीवन के विकास हेतु उचित-अनुचित विधि-विधान निर्धारित करता है। उन विधि-विधानों का पालन करना ही नैतिक चेतना का मानदण्ड माना जाता है।

2. सामाजिक विधि-विधान– नैतिक जीवन को जीवंत बनाए रखने के लिए समाज अनेकानेक आचार-संहिता का निर्धारण करता है। समाज द्वारा निर्धारित कर्त्तव्यों की आचार-संहिता को ज्यों का त्यों चुपचाप स्वीकार कर लेना ही नैतिक प्रतिमान है। समाज में पीढ़ियों से चले आने वाले सज्जन पुरुषों का अच्छा आचरण या व्यवहार समाज का विधि-विधान कहलाता है। जो इन विधि-विधानों का आचरण करता है, वह पुरुष सत्पुरुष बनने की पात्रता का विकास करता है।

3. वैधानिक विधि-विधान– अनैतिकता-अनाचार जैसी हीन प्रवृत्तियों से मुक्त करवाने हेतु राज सत्ता के द्वारा अनेकविध विधि-विधान बनाए जाते हैं। इन विधि-विधानों के अन्तर्गत 'यह करना उचित है' अथवा 'यह करना चाहिए' आदि तथ्यों का निरूपण रहता है। राज सत्ता द्वारा आदेशित विधि-विधान का पालन आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

इन नियमों का पालन करने से चेतना अशुभ प्रवृत्तियों से अलग रहती है।

4. धार्मिक विधि-विधान– इसमें आप्त पुरुषों के आदेश-निर्देश, विधि-निषेध, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य निर्धारित रहते हैं। जैन दर्शन में "आणाए धम्मो" कहकर इसे स्पष्ट किया गया है। जैनागमों में साधक के लिए जो विधि-विधान या आचार निश्चित किए गये हैं, यदि उनका पालन नहीं किया जाता है तो आप्त के अनुसार यह कर्म अनैतिकता की कोटि में आता है। धार्मिक विधि-विधान जो अर्हत् आदेशानुसार है उसका धर्माचरण करता हुआ वीर साधक अकुतोभय हो जाता है अर्थात वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न हो, वैसा व्यवहार नहीं करता। यही सद्व्यवहार धर्म है तथा यही हमारे कर्मों के नैतिक मूल्यांकन की कसौटी है। तीर्थंकरोपदिष्ट विधि-निषेध मूलक विधानों की नैतिकता एवं अनैतिकता का मानदण्ड माना गया है।

लौकिक एषणाओं से विमुक्त, अरहन्त प्रवाह में विलीन, अप्रमत्त स्वाध्याय रसिका साध्वी रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन वाङ्मय की अनमोल कृति खरतरगच्छाचार्य श्री जिनप्रभसूरि द्वारा विरचित **विधिमार्गप्रपा** में गुम्फित जाज्वल्यमान विषयों पर अपनी तीक्ष्ण प्रज्ञा से जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन को मुख्यतः चार भाग (23 खण्डों) में वर्गीकृत करने का अतुलनीय कार्य किया है। शोध ग्रन्थ के अनुशीलन से यह स्पष्टतः हो जाता है कि साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी ने चेतना के ऊर्ध्वीकरण हेतु प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में जिन आज्ञा का निरूपण किसी परम्परा के दायरे से नहीं प्रज्ञा की कसौटी पर कस कर किया है। प्रस्तुत कृति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हर पंक्ति प्रज्ञा के आलोक से जगमगा रही है। बुद्धिवाद के इस युग में विधि-विधान को एक नव्य-भव्य स्वरूप प्रदान करने का सुन्दर, समीचीन, समुचित प्रयास किया गया है। आत्म पिपासुओं के लिए एवं अनुसन्धित्सुओं के लिए यह श्रुत निधि आत्म सम्मानार्जन, भाव परिष्कार और आन्तरिक औज्ज्वल्य की निष्पत्ति में सहायक सिद्ध होगी।

अल्प समयावधि में साध्वी सौम्यगुणाश्रीजी ने जिस प्रमाणिकता एवं दार्शनिकता से जिन वचनों की परम्परा के आग्रह से रिक्त तथा साम्प्रदायिक मान्यताओं के दुराग्रह से मुक्त रखकर सर्वग्राही श्रुत का निष्पादन जैन वाङ्मय के क्षितिज पर नव्य नक्षत्र के रूप में किया है। आप श्रुत साभिरुचि में निरन्तर प्रवहमान बनकर अपने निर्णय, विशुद्ध विचार एवं निर्मल प्रज्ञा के द्वारा सदैव सरल, सरस और सुगम अभिनव ज्ञान रश्मियों को प्रकाशित करती रहें। यही अन्तःकरण आशीर्वाद सह अनेकशः अनुमोदना... अभिनंदन।

जिनमहोदय सागर सूरि चरणरज
मुनि पीयूष सागर

जैन विधि की अनमोल निधि

यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि साध्वी डॉ. सौम्यगुणा श्रीजी म.सा. द्वारा "जैन-विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन" इस विषय पर सुविस्तृत शोध प्रबन्ध सम्पादित किया गया है। वस्तुतः किसी भी कार्य या व्यवस्था के सफल निष्पादन में विधि (Procedure) का अप्रतिम महत्त्व है। प्राचीन कालीन संस्कृतियाँ चाहे वह वैदिक हो या श्रमण, इससे अछूती नहीं रही। श्रमण संस्कृति में अग्रगण्य है– जैन संस्कृति। इसमें विहित विविध विधि-विधान वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं अध्यात्मिक जीवन के विकास में अपनी महती भूमिका अदा करते हैं। इसी तथ्य को प्रतिपादित करता है प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध।

इस शोध प्रबन्ध की प्रकाशन वेला में हम साध्वीश्री के कठिन प्रयत्न की आत्मिक अनुमोदना करते हैं। निःसंदेह, जैन विधि की इस अनमोल निधि से श्रावक-श्राविका, श्रमण-श्रमणी, विद्वान-विचारक सभी लाभान्वित होंगे। यह विश्वास करते हैं कि वर्तमान युवा पीढ़ी के लिए भी यह कृति अति प्रासंगिक होगी, क्योंकि इसके माध्यम से उन्हें आचार-पद्धति यानि विधि-विधानों का वैज्ञानिक पक्ष भी ज्ञात होगा और वह अधिक आचार निष्ठ बन सकेगी।

साध्वीश्री इसी प्रकार जिनशासन की सेवा में समर्पित रहकर स्व-पर विकास में उपयोगी बनें, यही मंगलकामना।

मुनि महेन्द्रसागर
1.2.13 भद्रावती

विदुषी आर्या रत्ना सौम्यगुणा श्रीजी ने जैन विधि विधानों पर विविध पक्षीय बृहद शोध कार्य संपन्न किया है। चार भागों में विभाजित एवं 23 खण्डों में वर्गीकृत यह विशाल कार्य निःसंदेह अनुमोदनीय, प्रशंसनीय एवं अभिनंदनीय है।

शासन देव से प्रार्थना है कि उनकी बौद्धिक क्षमता में दिन दूगुनी रात चौगुनी वृद्धि हो। ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम ज्ञान गुण की वृद्धि के साथ आत्म ज्ञान प्राप्ति में सहायक बनें।

यह शोध ग्रन्थ ज्ञान पिपासुओं की पिपासा को शान्त करे, यही मनोहर अभिलाषा।

महत्तरा मनोहर श्री चरणरज
प्रवर्त्तिनी कीर्तिप्रभा श्रीजी

दूध को दही में परिवर्तित
करना सरल है। जामन डालिए
और दही तैयार हो जाता है।
किन्तु, दही से मक्खन निकालना
कठिन है। इसके लिए दही को
मथना पड़ता है। तब कहीं
जाकर मक्खन प्राप्त होता है।
इसी प्रकार अध्ययन एक
अपेक्षा से सरल है, किन्तु
तुलनात्मक अध्ययन कठिन है।
इसके लिए कई शास्त्रों को
मथना पड़ता है।

साध्वी सौम्यगुणा श्री ने जैन
विधि-विधानों पर रचित साहित्य
का मंथन करके एक सुंदर चिंतन
प्रस्तुत करने का जो प्रयास किया है
वह अत्यंत अनुमोदनीय एवं
प्रशंसनीय है।

शुभकामना व्यक्त
करती हूँ कि यह
शास्त्रमंथन अनेक साधकों
के कर्मबंधन तोड़ने में
सहायक बने।

साध्वी संवेगनिधि

सुश्रावक श्री कान्तिलालजी मुकीम द्वारा शोध प्रबंध सार संप्राप्त हुआ। विदुषी साध्वी श्री सौम्यगुणाजी के शोधसार ग्रन्थ को देखकर ही कल्पना होने लगी कि शोध ग्रन्थ कितना विराट्काय होगा। वर्षों के अथक परिश्रम एवं सतत रुचि पूर्वक किए गए कार्य का यह सुफल है।

वैदुष्य सह विशालता इस शोध ग्रन्थ की विशेषता है।

हमारी हार्दिक शुभकामना है कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनका बहुमुखी विकास हो! जिनशासन के गगन में उनकी प्रतिभा, पवित्रता एवं पुण्य का दिव्यनाद हो। किं बहुना!

साध्वी मणिप्रभा श्री
भद्रावती तीर्थ

मंगल नाद

'मुद्रा' नाम सुनते ही हमारे सामने प्रतिष्ठा आदि में उपयोगी अथवा साधना आदि में प्रयुक्त कुछ मुद्राएँ उभरने लगती है, परन्तु यह शब्द मात्र वहाँ तक सीमित नहीं है। हमारी दैनिक क्रियाओं में भी मुद्रा का प्रमुख स्थान है क्योंकि जन-जीवन की प्रत्येक अभिव्यक्ति मुद्रा के माध्यम से होती है। यदि विधि-विधान के सन्दर्भ में मुद्रा प्रयोग पर विचार करें तो अब तक प्रचलित मुद्राओं के विषय में ही जानकारी एवं पुस्तकें आदि संप्राप्त है।

साध्वी सौम्यगुणाजी ने मुद्रा विषयक कार्य अत्यन्त बृहद् स्तर पर कई नूतन रहस्यों को उद्घाटित करते हुए किया है। इन्होंने जैन परम्परा से सम्बन्धित लगभग 200 मुद्राएँ, 400 बौद्ध मुद्राएँ, हिन्दू और नाट्य परम्परा से सम्बन्धित करीब 400 ऐसे लगभग हजार मुद्राओं पर ऐतिहासिक कार्य किया है जो विश्व स्तर पर अपना प्रथम स्थान रखता है। यह कार्य समस्त धर्मावलम्बियों के लिए उपयोगी भी बनेगा, क्योंकि इसे साम्प्रदायिक सीमाओं से परे किया गया है। यद्यपि बौद्ध एवं वैदिक परम्परा में इस विषय पर कार्य हुआ है किन्तु वह स्वरूप एवं विवरण तक ही सीमित है, उनकी उपादेयता एवं उपयोगिता आदि के सम्बन्ध में यह प्रथम कार्य है। इसी के साथ साध्वीजी ने सामाजिक, पारिवारिक, वैयक्तिक, मनोवैज्ञानिक आदि के परिप्रेक्ष्य में भी इस विषय पर गहन अध्ययन किया है।

इन मुद्राओं में से भी अभ्यास साध्य, अनभ्यास साध्य मुद्राओं का वर्णन भिन्न-भिन्न साहित्य में प्राप्त मुद्राओं के आधार पर किया गया है। इसकी वर्तमान उपयोगिता दर्शाने हेतु साध्वीजी ने एक्युप्रेशर, चक्र जागरण, तत्त्व संतुलन एवं विभिन्न रोगों पर इनका प्रभाव आदि के परिप्रेक्ष्यों में भी यह कार्य किया है। मुद्राओं का ज्ञान सुगमता से किया जा सके एतदर्थ प्रत्येक मुद्रा का रेखाचित्र दीर्घ परिश्रम एवं अत्यन्त सजगता पूर्वक बनाया गया है।

इस दुरुह कार्य को साध्वीजी ने जिस निष्ठा एवं उदार हृदयता के साथ सम्पन्न किया है एतदर्थ वे सदैव अनुशंसनीय एवं अनुमोदनीय हैं। इनकी बौद्धिक क्षमता का ही परिणाम है कि दो वर्ष जितने लम्बे कार्य को इन्होंने एक वर्ष के भीतर पूर्ण किया है। यद्यपि कई बार हम लोगों ने समय की अल्पता तथा कार्य की विराटता एवं दुरुहता को देखते हुए जैन परम्परा तक सीमित रखने का सुझाव भी दिया परंतु यदि सामग्री एवं जानकारी होते हुए कार्य को आधा अधूरा छोड़ना यह अन्वेषक का लक्षण नहीं है। इसलिए अत्यल्प समय में कठोर श्रम के साथ इस कार्य को सात खण्डों में सम्पन्न किया है। आज मैं सौम्याजी के इस कार्य से स्वयं को ही नहीं अपितु संपूर्ण जैन समाज को गौरवान्वित अनुभव कर रही हूँ।

मैं अन्तर्मन से सौम्याजी की एकाग्रता, कार्य मग्नता, आज्ञाकारिता एवं अप्रमत्तता के लिए इन्हें साधुवाद एवं भविष्य के लिए शुभाशीष प्रदान करती हूँ।

आर्य्या शशिप्रभा श्री

दीक्षा गुरु प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा. एक परिचय

रजताभ रजकणों से रंजित राजस्थान असंख्य कीर्ति गाथाओं का वह रश्मि पुंज है जिसने अपनी आभा के द्वारा संपूर्ण धरा को देदीप्यमान किया है। इतिहास के पन्नों में जिसकी पावन पाण्डुलिपियाँ अंकित है ऐसे रंगीले राजस्थान का विश्रुत नगर है जयपुर। इस जौहरियों की नगरी ने अनेक दिव्य रत्न इस वसुधा को अर्पित किए। उन्हीं में से कोहिनूर बनकर जैन संघ की आभा को दीप्त करने वाला नाम है– पूज्या प्रवर्त्तिनी सज्जन श्रीजी म.सा.।

आपश्री इस कलियुग में सतयुग का बोध कराने वाली सहज साधिका थी। चतुर्थ आरे का दिव्य अवतार थी। जयपुर की पुण्य धरा से आपका विशेष सम्बन्ध रहा है। आपके जीवन की अधिकांश महत्त्वपूर्ण घटनाएँ जैसे– जन्म, विवाह, दीक्षा, देह विलय आदि इसी वसुधा की साक्षी में घटित हुए।

आपका जीवन प्राकृतिक संयोगों का अनुपम उदाहरण था। जैन परम्परा के तेरापंथी आम्नाय में आपका जन्म, स्थानकवासी परम्परा में विवाह एवं मन्दिरमार्गी खरतर परम्परा में प्रव्रज्या सम्पन्न हुई। आपके जीवन का यही त्रिवेणी संगम रत्नत्रय की साधना के रूप में जीवन्त हुआ।

आपका जन्म वैशाखी बुद्ध पूर्णिमा के पर्व दिवस के दिन हुआ। आप उन्हीं के समान तत्त्ववेत्ता, अध्यात्म योगी, प्रज्ञाशील साधक थी। सज्जनता, मधुरता, सरलता, सहजता, संवेदनशीलता, परदु:खकातरता आदि गुण तो आप में जन्मत: परिलक्षित होते थे। इसी कारण आपका नाम सज्जन रखा गया और यही नाम दीक्षा के बाद भी प्रवर्त्तित रहा।

संयम ग्रहण हेतु दीर्घ संघर्ष करने के बावजूद भी आपने विनय, मृदुता, साहस एवं मनोबल डिगने नहीं दिया। अन्तत: 35 वर्ष की आयु में पूज्या प्रवर्त्तिनी ज्ञान श्रीजी म.सा. के चरणों में भागवती दीक्षा अंगीकार की।

दीवान परिवार के राजशाही ठाठ में रहने के बाद भी संयमी जीवन का हर

छोटा-बड़ा कार्य आप अत्यंत सहजता पूर्वक करती थी। छोटे-बड़े सभी की सेवा हेतु सदैव तत्पर रहती थी। आपका जीवन सद्गुणों से युक्त विद्वत्ता की दिव्य माला था। आप में विद्यमान गुण शास्त्र की निम्न पंक्तियों को चरितार्थ करते थे–

शीलं परहितासक्ति, रनुत्सेकः क्षमा धृतिः।
अलोभश्चेति विद्यायाः, परिपाकोज्ज्वलं फलः ।।

अर्थात शील, परोपकार, विनय, क्षमा, धैर्य, निर्लोभता आदि विद्या की पूर्णता के उज्ज्वल फल हैं।

अहिंसा, तप साधना, सत्यनिष्ठा, गम्भीरता, विनम्रता एवं विद्वानों के प्रति असीम श्रद्धा उनकी विद्वत्ता की परिधि में शामिल थे। वे केवल पुस्तकें पढ़कर नहीं अपितु उन्हें आचरण में उतार कर महान बनी थी। आपको शब्द और स्वर की साधना का गुण भी सहज उपलब्ध था।

दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात आप 20 वर्षों तक गुरु एवं गुरु भगिनियों की सेवा में जयपुर रही। तदनन्तर कल्याणक भूमियों की स्पर्शना हेतु पूर्वी एवं उत्तरी भारत की पदयात्रा की। आपश्री ने 65 वर्ष की आयु और उसमें भी ज्येष्ठ महीने की भयंकर गर्मी में सिद्धाचल तीर्थ की नव्वाणु यात्रा कर एक नया कीर्तिमान स्थापित किया।

राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार आदि क्षेत्रों में धर्म की सरिता प्रवाहित करते हुए भी आप सदैव ज्ञानदान एवं ज्ञानपान में संलग्न रहती थी। इसी कारण लोक परिचय, लोकैषणा, लोकाशंसा आदि से अत्यंत दूर रही।

आपश्री प्रखर वक्ता, श्रेष्ठ साहित्य सर्जिका, तत्त्व चिंतिका, आशु कवयित्री एवं बहुभाषाविद थी। विद्वदवर्ग में आप सर्वोत्तम स्थान रखती थी। हिन्दी, गुजराती, मारवाड़ी, संस्कृत, प्राकृत, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी आदि अनेक भाषाओं पर आपका सर्वाधिकार था। जैन दर्शन के प्रत्येक विषय का आपको मर्मस्पर्शी ज्ञान था। आप ज्योतिष, व्याकरण, अलंकार, साहित्य, इतिहास, शकुन शास्त्र, योग आदि विषयों की भी परम वेत्ता थी।

उपलब्ध सहस्र रचनाएँ तथा अनुवादित सम्पादित एवं लिखित साहित्य आपकी कवित्व शक्ति और विलक्षण प्रज्ञा को प्रकट करते हैं।

प्रभु दर्शन में तन्मयता, प्रतिपल आत्म रमणता, स्वाध्याय मग्नता, अध्यात्म लीनता, निस्पृहता, अप्रमत्तता, पूज्यों के प्रति लघुता एवं छोटों के

प्रति मृदुता आदि गुण आपश्री में बेजोड़ थे। हठवाद, आग्रह, तर्क-वितर्क, अहंकार, स्वार्थ भावना का आप में लवलेश भी नहीं था। सभी के प्रति समान स्नेह एवं मृदु व्यवहार, निरपेक्षता एवं अंतरंग विरक्तता के कारण आप सर्वजन प्रिय और आदरणीय थी।

आपकी गुण गरिमा से प्रभावित होकर गुरुजनों एवं विद्वानों द्वारा आपको आगम ज्योति, शास्त्र मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, अध्यात्म योगिनी आदि सार्थक पदों से अलंकृत किया गया। वहीं सकल श्री संघ द्वारा आपको साध्वी समुदाय में सर्वोच्च प्रवर्त्तिनी पद से भी विभूषित किया गया।

आपश्री के उदात्त व्यक्तित्व एवं कर्मशील कर्तृत्व से प्रभावित हजारों श्रद्धालुओं की आस्था को 'श्रमणी' अभिनन्दन ग्रन्थ के रूप में लोकार्पित किया गया। खरतरगच्छ परम्परा में अब तक आप ही एक मात्र ऐसी साध्वी हैं जिन पर अभिनन्दन ग्रन्थ लिखा गया है।

आप में समस्त गुण चरम सीमा पर परिलक्षित होते थे। कोई सद्गुण ऐसा नहीं था जिसके दर्शन आप में नहीं होते हो। जिसने आपको देखा वह आपका ही होकर रह गया।

आपके निरपेक्ष, निस्पृह एवं निरासक्त जीवन की पूर्णता जैन एवं जैनेतर दोनों परम्पराओं में मान्य, शाश्वत आराधना तिथि **'मौन एकादशी'** पर्व के दिन हुई। इस पावन तिथि के दिन आपने देह का त्याग कर सदा के लिए मौन धारण कर लिया। आपके इस समाधिमरण को श्रेष्ठ मरण के रूप में सिद्ध करते हुए उपाध्याय मणिप्रभ सागरजी म.सा. ने लिखा है–

महिमा तेरी क्या गाये हम, दिन कैसा स्वीकार किया।
मौन ग्यारस माला जपते, मौन सर्वथा धार लिया
गुरुवर्य्या तुम अमर रहोगी, साधक कभी न मरते हैं।।

आज परम पूज्या संघरत्ना शशिप्रभा श्रीजी म.सा. आपके मंडल का सम्यक संचालन कर रही हैं। यद्यपि आपका विचरण क्षेत्र अल्प रहा परंतु आज आपका नाम दिग्दिगन्त व्याप्त है। आपके नाम स्मरण मात्र से ही हर प्रकार की Tension एवं विपदाएँ दूर हो जाती है।

●

शिक्षा गुरु पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. एक परिचय

'धोरों की धरती' के नाम से विख्यात राजस्थान अगणित यशोगाथाओं का उद्भव स्थल है। इस बहुरत्ना वसुंधरा पर अनेकश: वीर योद्धाओं, परमात्म भक्तों एवं ऋषि-महर्षियों का जन्म हुआ है। इसी रंग-रंगीले राजस्थान की परम पुण्यवंती साधना भूमि है श्री फलौदी। नयन रम्य जिनालय, दादाबाड़ियों एवं स्वाध्याय गुंज से शोभायमान उपाश्रय इसकी ऐतिहासिक धर्म समृद्धि एवं शासन समर्पण के प्रबल प्रतीक हैं। इस मातृभूमि ने अपने उर्वरा से कई अमूल्य रत्न जिनशासन की सेवा में अर्पित किए हैं। चाहे फिर वह साधु-साध्वी के रूप में हो या श्रावक-श्राविका के रूप में। वि.सं. 2001 की भाद्रकृष्णा अमावस्या को धर्मनिष्ठ दानवीर ताराचंदजी एवं सरल स्वभावी बालादेवी गोलेछा के गृहांगण में एक बालिका की किलकारियां गूंज रही थी। अमावस्या के दिन उदित हुई यह किरण भविष्य में जिनशासन की अनुपम किरण बनकर चमकेगी यह कौन जानता था? कहते हैं सज्जनों के सम्पर्क में आने से दुर्जन भी सज्जन बन जाते हैं तब सम्यकदृष्टि जीव तो नि:सन्देह सज्जन का संग मिलने पर स्वयमेव ही महानता को प्राप्त कर लेते हैं।

किरण में तप त्याग और वैराग्य के भाव जन्मजात थे। इधर पारिवारिक संस्कारों ने उसे अधिक उफान दिया। पूर्वोपार्जित सत्संस्कारों का जागरण हुआ और वह भुआ महाराज उपयोग श्रीजी के पथ पर अग्रसर हुई। अपने बाल मन एवं कोमल तन को गुरु चरणों में समर्पित कर 14 वर्ष की अल्पायु में ही किरण एक तेजस्वी सूर्य रश्मि से शीतल शशि के रूप में प्रवर्त्तित हो गई। आचार्य श्री कवीन्द्र सागर सूरीश्वरजी म.सा. की निश्रा में मरूधर ज्योति मणिप्रभा श्रीजी एवं आपकी बड़ी दीक्षा एक साथ सम्पन्न हुई।

इसे पुण्य संयोग कहें या गुरु कृपा की फलश्रुति? आपने 32 वर्ष के गुरु सान्निध्य काल में मात्र एक चातुर्मास गुरुवर्य्याश्री से अलग किया और वह भी पूज्या प्रवर्त्तिनी विचक्षण श्रीजी म.सा. की आज्ञा से। 32 वर्ष की सान्निध्यता में आप कुल 32 महीने भी गुरु सेवा से वंचित नहीं रही। आपके जीवन की यह

विशेषता पूज्यवरों के प्रति सर्वात्मना समर्पण, अगाध सेवा भाव एवं गुरुकुल वास के महत्त्व को इंगित करती है।

आपश्री सरलता, सहजता, सहनशीलता, सहृदयता, विनम्रता, सहिष्णुता, दीर्घदर्शिता आदि अनेक दिव्य गुणों की पुंज हैं। संयम पालन के प्रति आपकी निष्ठा एवं मनोबल की दृढ़ता यह आपके जिन शासन समर्पण की सूचक है। आपका निश्छल, निष्कपट, निर्दम्भ व्यक्तित्व जनमानस में आपकी छवि को चिरस्थापित करता है। आपश्री का बाह्य आचार जितना अनुमोदनीय है, आंतरिक भावों की निर्मलता भी उतनी ही अनुशंसनीय है। आपकी इसी गुणवत्ता ने कई पथ भ्रष्टों को भी धर्माभिमुख किया है। आपका व्यवहार हर वर्ग के एवं हर उम्र के व्यक्तियों के साथ एक समान रहता है। इसी कारण आप आबाल वृद्ध सभी में समादृत हैं। हर कोई बिना किसी संकोच या हिचक के आपके समक्ष अपने मनोभाव अभिव्यक्त कर सकता है।

शास्त्रों में कहा गया है 'सन्त हृदय नवनीत समाना'– आपका हृदय दूसरों के लिए मक्खन के समान कोमल और सहिष्णु है। वहीं इसके विपरीत आप स्वयं के लिए वज्र से भी अधिक कठोर हैं। आपश्री अपने नियमों के प्रति अत्यन्त दृढ़ एवं अतुल मनोबली हैं। आज जीवन के लगभग सत्तर बसंत पार करने के बाद भी आप युवाओं के समान अप्रमत्त, स्फुर्तिमान एवं उत्साही रहती हैं। विहार में आपश्री की गति समस्त साध्वी मंडल से अधिक होती है।

आहार आदि शारीरिक आवश्यकताओं को आपने अल्पायु से ही सीमित एवं नियंत्रित कर रखा है। नित्य एकाशना, पुरिमड्ढ प्रत्याख्यान आदि के प्रति आप अत्यंत चुस्त हैं। जिस प्रकार सिंह अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने हेतु पूर्णतः सचेत एवं तत्पर रहता है वैसे ही आपश्री विषय-कषाय रूपी शत्रुओं का दमन करने में सतत जागरूक रहती हैं। विषय वर्धक अधिकांश विगय जैसे– मिठाई, कढ़ाई, दही आदि का आपके सर्वथा त्याग है।

आपश्री आगम, धर्म दर्शन, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती आदि विविध विषयों की ज्ञाता एवं उनकी अधिकारिणी है। व्यावहारिक स्तर पर भी आपने एम.ए. के समकक्ष दर्शनाचार्य की परीक्षा उत्तीर्ण की है। अध्ययन के संस्कार आपको गुरु परम्परा से वंशानुगत रूप में प्राप्त हुए हैं। आपकी निश्रागत गुरु भगिनियों एवं शिष्याओं के अध्ययन, संयम पालन तथा आत्मोकर्ष के प्रति

आप सदैव सचेष्ट रहती हैं। आपश्री एक सफल अनुशास्ता हैं यही वजह है कि आपकी देखरेख में सज्जन मण्डल की फुलवारी उन्नति एवं उत्कर्ष को प्राप्त कर रही हैं।

तप और जप आपके जीवन का अभिन्न अंग है। 'ॐ ह्रीं अर्हं' पद की रटना प्रतिपल आपके रोम-रोम में गुंजायमान रहती है। जीवन की कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी आप तदनुकूल मनःस्थिति बना लेती हैं। आप हमेशा कहती हैं कि

जो-जो देखा वीतराग ने, सो सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

आपकी परमात्म भक्ति एवं गुरुदेव के प्रति प्रवर्धमान श्रद्धा दर्शनीय है। आपका आगमानुरूप वर्तन आपको निसन्देह महान पुरुषों की कोटी में उपस्थित करता है। आपश्री एक जन प्रभावी वक्ता एवं सफल शासन सेविका हैं।

आपश्री की प्रेरणा से जिनशासन की शाश्वत परम्परा को अक्षुण्ण रखने में सहयोगी अनेकशः जिनमंदिरों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार हुआ है। श्रुत साहित्य के संवर्धन में आपश्री के साथ आपकी निश्रारत साध्वी मंडल का भी विशिष्ट योगदान रहा है। अब तक 25-30 पुस्तकों का लेखन-संपादन आपकी प्रेरणा से साध्वी मंडल द्वारा हो चुका है एवं अनेक विषयों पर कार्य अभी भी गतिमान है।

भारत के विविध क्षेत्रों का पद भ्रमण करते हुए आपने अनेक क्षेत्रों में धर्म एवं ज्ञान की ज्योति जागृत की है। राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, छ.ग., यू.पी., बिहार, बंगाल, तमिलनाडु, कर्नाटक, महाराष्ट्र, झारखंड, आन्ध्रप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों की यात्रा कर आपने उन्हें अपनी पदरज से पवित्र किया है। इन क्षेत्रों में हुए आपके ऐतिहासिक चातुर्मासों की चिरस्मृति सभी के मानस पटल पर सदैव अंकित रहेगी। अन्त में यही कहूँगी-

चिन्तन में जिसके हो क्षमता, वाणी में सहज मधुरता हो।
आचरण में संयम झलके, वह श्रद्धास्पद बन जाता है।
जो अन्तर में ही रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।
जो भीतर में ही भ्रमण करें, वह सन्त पुरुष कहलाता है।।

ऐसी विरल साधिका आर्यारत्न पूज्याश्री के चरण सरोजों में मेरा जीवन सदा भ्रमरवत् गुंजन करता रहे, यही अन्तरकामना।

साध्वी सौम्याजी की शोध यात्रा के अविस्मरणीय पल

साध्वी प्रियदर्शनाश्री

आज सौम्यगुणाजी को सफलता के इस उत्तुंग शिखर पर देखकर ऐसा लग रहा है मानो चिर रात्रि के बाद अब यह मनभावन अरुणिम वेला उदित हुई हो। आज इस सफलता के पीछे रहा उनका अथक परिश्रम, अनेकशः बाधाएँ, विषय की दुरूहता एवं दीर्घ प्रयास के विषय में सोचकर ही मन अभिभूत हो जाता है। जिस प्रकार किसान बीज बोने से लेकर फल प्राप्ति तक अनेक प्रकार से स्वयं को तपाता एवं खपाता है और तब जाकर उसे फल की प्राप्ति होती है या फिर जब कोई माता नौ महीने तक गर्भ में बालक को धारण करती है तब उसे मातृत्व सुख की प्राप्ति होती है ठीक उसी प्रकार सौम्यगुणाजी ने भी इस कार्य की सिद्धि हेतु मात्र एक या दो वर्ष नहीं अपितु सत्रह वर्ष तक निरन्तर कठिन साधना की है। इसी साधना की आँच में तपकर आज 23 Volumes के बृहद् रूप में इनका स्वर्णिम कार्य जन ग्राह्य बन रहा है।

आज भी एक-एक घटना मेरे मानस पटल पर फिल्म के रूप में उभर रही है। ऐसा लगता है मानो अभी की ही बात हो, सौम्याजी को हमारे साथ रहते हुए 28 वर्ष होने जा रहे हैं और इन वर्षों में इन्हें एक सुन्दर सलोनी गुड़िया से एक विदुषी शासन प्रभाविका, गूढ़ान्वेषी साधिका बनते देखा है। एक पाँचवीं पढ़ी हुई लड़की आज D.LIt की पदवी से विभूषित होने वाली है। वह भी कोई सामान्य D.Lit. नहीं, 22-23 भागों में किया गया एक बृहद् कार्य और जिसका एक-एक भाग एक शोध प्रबन्ध (Thesis) के समान है। अब तक शायद ही किसी भी शोधार्थी ने डी.लिट् कार्य इतने अधिक Volumes में सम्पन्न किया होगा। लाडनूं विश्वविद्यालय की प्रथम डी.लिट्. शोधार्थी सौम्याजी के इस कार्य ने विश्वविद्यालय के ऐतिहासिक कार्यों में स्वर्णिम पृष्ठ जोड़ते हुए श्रेष्ठतम उदाहरण प्रस्तुत किया है।

सत्रह वर्ष पहले हम लोग पूज्या गुरुवर्य्याश्री के साथ पूर्वी क्षेत्र की स्पर्शना कर रहे थे। बनारस में डॉ. सागरमलजी द्वारा आगम ग्रन्थों के गूढ़ रहस्यों को जानने का यह एक स्वर्णिम अवसर था अत: सन् 1995 में गुर्वाज्ञा से मैं, सौम्याजी एवं नूतन दीक्षित साध्वीजी ने भगवान पार्श्वनाथ की जन्मभूमि वाराणसी की ओर अपने कदम बढ़ाए। शिखरजी आदि तीर्थों की यात्रा करते हुए हम लोग धर्म नगरी काशी पहुँचे।

वाराणसी स्थित पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वहाँ के मन्दिरों एवं पंडितों के मंत्रनाद से दूर नीरव वातावरण में अद्भुत शांति का अनुभव करवा रहा था। अध्ययन हेतु मनोज्ञ एवं अनुकूल स्थान था। संयोगवश मरूधर ज्योति पूज्या मणिप्रभा श्रीजी म.सा. की निश्रावर्ती, मेरी बचपन की सखी पूज्या विद्युतप्रभा श्रीजी आदि भी अध्ययनार्थ वहाँ पधारी थी।

डॉ. सागरमलजी से विचार विमर्श करने के पश्चात आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा पर शोध करने का निर्णय लिया गया। सन् 1973 में पूज्य गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. बंगाल की भूमि पर पधारी थी। स्वाध्याय रसिक आगमज्ञ श्री अगरचन्दजी नाहटा, श्री भँवलालजी नाहटा से पूज्याश्री की पारस्परिक स्वाध्याय चर्चा चलती रहती थी। एकदा पूज्याश्री ने कहा कि मेरी हार्दिक इच्छा है जिनप्रभसूरिकृत विधिमार्गप्रपा आदि ग्रन्थों का अनुवाद हो। पूज्याश्री योग-संयोग वश उसका अनुवाद नहीं कर पाई। विषय का चयन करते समय मुझे गुरुवर्य्या श्री की वही इच्छा याद आई या फिर यह कहूं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सौम्याजी की योग्यता देखते हुए शायद पूज्याश्री ने ही मुझे इसकी अन्तस् प्रेरणा दी।

यद्यपि यह ग्रंथ विधि-विधान के क्षेत्र में बहु उपयोगी था परन्तु प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में आबद्ध होने के कारण उसका हिन्दी अनुवाद करना आवश्यक हो गया। सौम्याजी के शोध की कठिन परीक्षाएँ यहीं से प्रारम्भ हो गई। उन्होंने सर्वप्रथम प्राकृत व्याकरण का ज्ञान किया। तत्पश्चात दिन-रात एक कर पाँच महीनों में ही इस कठिन ग्रंथ का अनुवाद अपनी क्षमता अनुसार कर डाला। लेकिन यहीं पर समस्याएँ समाप्त नहीं हुई। सौम्यगुणाजी जो कि राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से दर्शनाचार्य (एम.ए.) थीं, बनारस में पी-एच.डी. हेतु आवेदन नहीं कर सकती थी। जिस लक्ष्य को लेकर आए थे वह कार्य पूर्ण नहीं होने से मन थोड़ा विचलित हुआ परन्तु विश्वविद्यालय के नियमों के कारण हम कुछ भी करने में

असमर्थ थे अत: पूज्य गुरुवर्य्याश्री के चरणों में पहुँचने हेतु पुन: कलकत्ता की ओर प्रयाण किया। हमारा वह चातुर्मास संघ आग्रह के कारण पुन: कलकत्ता नगरी में हुआ। वहाँ से चातुर्मास पूर्णकर धर्मानुरागी जनों को शीघ्र आने का आश्वासन देते हुए पूज्याश्री के साथ जयपुर की ओर विहार किया। जयपुर में आगम ज्योति, पूज्या गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की समाधि स्थली मोहनबाड़ी में मूर्ति प्रतिष्ठा का आयोजन था अत: उग्र विहार कर हम लोग जयपुर पहुँचें। बहुत ही सुन्दर और भव्य रूप में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। जयपुर संघ के अति आग्रह से पूज्याश्री एवं सौम्यगुणाजी का चातुर्मास जयपुर ही हुआ। जयपुर का स्वाध्यायी श्रावक वर्ग सौम्याजी से काफी प्रभावित था। यद्यपि बनारस में पी-एच.डी. नहीं हो पाई थी किन्तु सौम्याजी का अध्ययन आंशिक रूप में चालू था। उसी बीच डॉ. सागरमलजी के निर्देशानुसार जयपुर संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रो. डॉ. शीतलप्रसाद जैन के मार्गदर्शन में धर्मानुरागी श्री नवरतनमलजी श्रीमाल के डेढ़ वर्ष के अथक प्रयास से उनका रजिस्ट्रेशन हुआ। सामाजिक जिम्मेदारियों को संभालते हुए उन्होंने अपने कार्य को गति दी।

पी-एच.डी. का कार्य प्रारम्भ तो कर लिया परन्तु साधु जीवन की मर्यादा, विषय की दुरूहता एवं शोध आदि के विषय में अनुभवहीनता से कई बाधाएँ उत्पन्न होती रही। निर्देशक महोदय दिगम्बर परम्परा के होने से श्वेताम्बर विधि-विधानों के विषय में उनसे भी विशेष सहयोग मिलना मुश्किल था अत: सौम्याजी को जो करना था अपने बलबूते पर ही करना था। यह सौम्याजी ही थी जिन्होंने इतनी बाधाओं और रूकावटों को पार कर इस शोध कार्य को अंजाम दिया।

जयपुर के पश्चात कुशल गुरुदेव की प्रत्यक्ष स्थली मालपुरा में चातुर्मास हुआ। वहाँ पर लाइब्रेरी आदि की असुविधाओं के बीच भी उन्होंने अपने कार्य को पूर्ण करने का प्रयास किया। तदनन्तर जयपुर में एक महीना रहकर महोपाध्याय विनयसागरजी से इसका करेक्शन करवाया तथा कुछ सामग्री संशोधन हेतु डॉ. सागरमलजी को भेजी। यहाँ तक तो उनकी कार्य गति अच्छी रही किन्तु इसके बाद लम्बे विहार होने से उनका कार्य प्राय: अवरूद्ध हो गया। फिर अगला चातुर्मास पालीताणा हुआ। वहाँ पर आने वाले यात्रीगणों की भीड़ और तप साधना-आराधना में अध्ययन नहींवत ही हो पाया। पुन: साधु जीवन के नियमानुसार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर कदम बढ़ाए। रायपुर (छ.ग.) जाने हेतु लम्बे विहारों के चलते वे अपने कार्य को किंचित भी संपादित नहीं कर पा रही थी। रायपुर पहुँचते-

पहुँचते Registration की अवधि अन्तिम चरण तक पहुँच चुकी थी अत: चातुर्मास के पश्चात मुदितप्रज्ञा श्रीजी और इन्हें रायपुर छोड़कर शेष लोगों ने अन्य आसपास के क्षेत्रों की स्पर्शना की। रायपुर निवासी सुनीलजी बोथरा के सहयोग से दो-तीन मास में पूरे काम को शोध प्रबन्ध का रूप देकर उसे सन् 2001 में राजस्थान विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया गया। येन केन प्रकारेण इस शोध कार्य को इन्होंने स्वयं की हिम्मत से पूर्ण कर ही दिया।

तदनन्तर 2002 का बैंगलोर चातुर्मास सम्पन्न कर मालेगाँव पहुँचे। वहाँ पर संघ के प्रयासों से चातुर्मास के अन्तिम दिन उनका शोध वायवा संपन्न हुआ और उन्हें कुछ ही समय में पी-एच.डी. की पदवी विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई। सन् 1995 बनारस में प्रारम्भ हुआ कार्य सन् 2003 मालेगाँव में पूर्ण हुआ। इस कालावधि के दौरान समस्त संघों को उनकी पी-एच.डी. के विषय में ज्ञात हो चुका था और विषय भी रुचिकर था अत: उसे प्रकाशित करने हेतु विविध संघों से आग्रह होने लगा। इसी आग्रह ने उनके शोध को एक नया मोड़ दिया। सौम्याजी कहती 'मेरे पास बताने को बहुत कुछ है, परन्तु वह प्रकाशन योग्य नहीं है' और सही मायने में शोध प्रबन्ध सामान्य जनता के लिए उतना सुगम नहीं होता अत: गुरुवर्य्या श्री के पालीताना चातुर्मास के दौरान विधिमार्गप्रपा के अर्थ का संशोधन एवं अवान्तर विधियों पर ठोस कार्य करने हेतु वे अहमदाबाद पहुँची। इसी दौरान पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. ने भी इस कार्य का पूर्ण सर्वेक्षण कर उसमें अपेक्षित सुधार करवाए। तदनन्तर L.D. Institute के प्रोफेसर जितेन्द्र भाई, फिर कोबा लाइब्रेरी से मनोज भाई सभी के सहयोग से विधिमार्गप्रपा के अर्थ में रही त्रुटियों को सुधारते हुए उसे नवीन रूप दिया।

इसी अध्ययन काल के दौरान जब वे कोबा में विधि ग्रन्थों का आलोडन कर रही थी तब डॉ. सागरमलजी का बायपास सर्जरी हेतु वहाँ पदार्पण हुआ। सौम्याजी को वहाँ अध्ययनरत देखकर बोले– "आप तो हमारी विद्यार्थी हो, यहाँ क्या कर रही हो? शाजापुर पधारिए मैं यथासंभव हर सहयोग देने का प्रयास करूँगा।" यद्यपि विधि विधान डॉ. सागरमलजी का विषय नहीं था परन्तु उनकी ज्ञान प्रौढ़ता एवं अनुभव शीलता सौम्याजी को सही दिशा देने हेतु पर्याप्त थी। वहाँ से विधिमार्गप्रपा का नवीनीकरण कर वे गुरुवर्य्याश्री के साथ मुम्बई चातुर्मासार्थ गईं। महावीर स्वामी देरासर पायधुनी से विधिप्रपा का प्रकाशन बहुत ही सुन्दर रूप में हुआ।

किसी भी कार्य में बार-बार बाधाएँ आए तो उत्साह एवं प्रवाह स्वत: मन्द हो जाता है, परन्तु सौम्याजी का उत्साह विपरीत परिस्थितियों में भी वृद्धिंगत रहा। मुम्बई का चातुर्मास पूर्णकर वे शाजापुर गईं। वहाँ जाकर डॉ. साहब ने डी.लिट करने का सुझाव दिया और लाडनूं विश्वविद्यालय के अन्तर्गत उन्हीं के निर्देशन में रजिस्ट्रेशन भी हो गया। यह लाडनूं विश्व भारती का प्रथम डी.लिट. रजिस्ट्रेशन था। सौम्याजी से सब कुछ ज्ञात होने के बाद मैंने उनसे कहा– प्रत्येक विधि पर अलग-अलग कार्य हो तो अच्छा है और उन्होंने वैसा ही किया। परन्तु जब कार्य प्रारम्भ किया था तब वह इतना विराट रूप ले लेगा यह अनुमान भी नहीं था। शाजापुर में रहते हुए इन्होंने छ:सात विधियों पर अपना कार्य पूर्ण किया। फिर गुर्वाज्ञा से कार्य को बीच में छोड़ पुन: गुरुवर्य्या श्री के पास पहुँची। जयपुर एवं टाटा चातुर्मास के सम्पूर्ण सामाजिक दायित्वों को संभालते हुए पूज्याश्री के साथ रही।

शोध कार्य पूर्ण रूप से रूका हुआ था। डॉ.साहब ने सचेत किया कि समयावधि पूर्णता की ओर है अत: कार्य शीघ्र पूर्ण करें तो अच्छा रहेगा वरना रजिस्ट्रेशन रद्द भी हो सकता है। अब एक बार फिर से उन्हें अध्ययन कार्य को गति देनी थी। उन्होंने लघु भगिनी मण्डल के साथ लाइब्रेरी युक्त शान्त-नीरव स्थान हेतु वाराणसी की ओर प्रस्थान किया। इस बार लक्ष्य था कि कार्य को किसी भी प्रकार से पूर्ण करना है। उनकी योग्यता देखते हुए श्री संघ एवं गुरुवर्य्या श्री उन्हें अब समाज के कार्यों से जोड़े रखना चाहते थे परंतु कठोर परिश्रम युक्त उनके विशाल शोध कार्य को भी सम्पन्न करवाना आवश्यक था। बनारस पहुँचकर इन्होंने मुद्रा विधि को छोटा कार्य जानकर उसे पहले करने के विचार से उससे ही कार्य को प्रारम्भ किया। देखते ही देखते उस कार्य ने भी एक विराट रूप ले लिया। उनका यह मुद्रा कार्य विश्वस्तरीय कार्य था जिसमें उन्होंने जैन, हिन्दू, बौद्ध, योग एवं नाट्य परम्परा की सहस्राधिक हस्त मुद्राओं पर विशेष शोध किया। यद्यपि उन्होंने दिन-रात परिश्रम कर इस कार्य को 6-7 महीने में एक बार पूर्ण कर लिया, किन्तु उसके विभिन्न कार्य तो अन्त तक चलते रहे। तत्पश्चात उन्होंने अन्य कुछ विषयों पर और भी कार्य किया। उनकी कार्यनिष्ठा देख वहाँ के लोग हतप्रभ रह जाते थे। संघ-समाज के बीच स्वयं बड़े होने के कारण नहीं चाहते हुए भी सामाजिक दायित्व निभाने ही पड़ते थे।

सिर्फ बनारस में ही नहीं रायपुर के बाद जब भी वे अध्ययन हेतु कहीं गई

तो उन्हें ही बड़े होकर जाना पड़ा। सभी गुरु बहिनों का विचरण शासन कार्यों हेतु भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में होने से इस समस्या का सामना भी उन्हें करना ही था। साधु जीवन में बड़े होकर रहना अर्थात संघ-समाज-समुदाय की समस्त गतिविधियों पर ध्यान रखना, जो कि अध्ययन करने वालों के लिए संभव नहीं होता परंतु साधु जीवन यानी विपरीत परिस्थितियों का स्वीकार और जो इन्हें पार कर आगे बढ़ जाता है वह जीवन जीने की कला का मास्टर बन जाता है। इस शोधकार्य ने सौम्याजी को विधि-विधान के साथ जीवन के क्षेत्र में भी मात्र मास्टर नहीं अपितु विशेषज्ञ बना दिया।

पूज्य बड़े म.सा. बंगाल के क्षेत्र में विचरण कर रहे थे। कोलकाता वालों की हार्दिक इच्छा सौम्याजी को बुलाने की थी। वैसे जौहरी संघ के पदाधिकारी श्री प्रेमचन्दजी मोघा एवं मंत्री मणिलालजी दुसाज शाजापुर से ही उनके चातुर्मास हेतु आग्रह कर रहे थे। अत: न चाहते हुए भी कार्य को अर्ध विराम दे उन्हें कलकत्ता आना पड़ा। शाजापुर एवं बनारस प्रवास के दौरान किए गए शोध कार्य का कम्पोज करवाना बाकी था और एक-दो विषयों पर शोध भी। परंतु "जिसकी खाओ बाजरी उसकी बजाओ हाजरी" अत: एक और अवरोध शोध कार्य में आ चुका था। गुरुवर्य्या श्री ने सोचा था कि चातुर्मास के प्रारम्भिक दो महीने के पश्चात इन्हें प्रवचन आदि दायित्वों से निवृत्त कर देंगे परंतु समाज में रहकर यह सब संभव नहीं होता।

चातुर्मास के बाद गुरुवर्य्या श्री तो शेष क्षेत्रों की स्पर्शना हेतु निकल पड़ी किन्तु उन्हें शेष कार्य को पूर्णकर अन्तिम स्वरूप देने हेतु कोलकाता ही रखा। कोलकाता जैसी महानगरी एवं चिर-परिचित समुदाय के बीच तीव्र गति से अध्ययन असंभव था अत: उन्होंने मौन धारण कर लिया और सप्ताह में मात्र एक घंटा लोगों से धर्म चर्चा हेतु खुला रखा। फिर भी सामाजिक दायित्वों से पूर्ण मुक्ति संभव नहीं थी। इसी बीच कोलकाता संघ के आग्रह से एवं अध्ययन हेतु अन्य सुविधाओं को देखते हुए पूज्याश्री ने इनका चातुर्मास कलकत्ता घोषित कर दिया। पूज्याश्री से अलग हुए सौम्याजी को करीब सात महीने हो चुके थे। चातुर्मास सम्मुख था और वे अपनी जिम्मेदारी पर प्रथम बार स्वतंत्र चातुर्मास करने वाली थी।

जेठ महीने की भीषण गर्मी में उन्होंने गुरुवर्य्याश्री के दर्शनार्थ जाने का मानस बनाया और ऊपर से मानसून सिना ताने खड़ा था। अध्ययन कार्य पूर्ण करने हेतु समयावधि की तलवार तो उनके ऊपर लटक ही रही थी। इन परिस्थितियों में

उन्होंने 35-40 कि.मी. प्रतिदिन की रफ्तार से दुर्गापुर की तरफ कदम बढ़ाए। कलकत्ता से दुर्गापुर और फिर पुन: कोलकाता की यात्रा में लगभग एक महीना पढ़ाई नहींवत हुई। यद्यपि गुरुवर्य्याश्री के साथ चातुर्मासिक कार्यक्रमों की जिम्मेदारियाँ इन्हीं की होती है फिर भी अध्ययन आदि के कारण इनकी मानसिकता चातुर्मास संभालने की नहीं थी और किसी दृष्टि से उचित भी था। क्योंकि सबसे बड़े होने के कारण प्रत्येक कार्यभार का वहन इन्हीं को करना था अत: दो माह तक अध्ययन की गति पर पुन: ब्रेक लग गया। पूज्या श्री हमेशा फरमाती है कि–

जो जो देखा वीतराग ने, सो-सो होसी वीरा रे।
अनहोनी ना होत जगत में, फिर क्यों होत अधीरा रे।।

सौम्याजी ने भी गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर संघ-समाज को समय ही नहीं अपितु भौतिकता में भटकते हुए मानव को धर्म की सही दिशा भी दिखाई। वर्तमान परिस्थितियों पर उनकी आम चर्चा से लोगों में धर्म को देखने का एक नया नजरिया विकसित हुआ। गुरुवर्य्याश्री एवं हम सभी को आन्तरिक आनंद की अनुभूति हो रही थी किन्तु सौम्याजी को वापस दुगुनी गति से अध्ययन में जुड़ना था। इधर कोलकाता संघ ने पूर्ण प्रयास किए फिर भी हिन्दी भाषा का कोई अच्छा कम्पोजर न मिलने से कम्पोजिंग कार्य बनारस में करवाया गया। दूरस्थ रहकर यह सब कार्य करवाना उनके लिए एक विषम समस्या थी। परंतु अब शायद वे इन सबके लिए सध गई थी, क्योंकि उनका यह कार्य ऐसी ही अनेक बाधाओं का सामना कर चुका था।

उधर सैंथिया चातुर्मास में पूज्याश्री का स्वास्थ्य अचानक दो-तीन बार बिगड़ गया। अत: वर्षावास पूर्णकर पूज्य गुरूवर्य्या श्री पुन: कोलकाता की ओर पधारी। सौम्याजी प्रसन्न थी क्योंकि गुरूवर्य्या श्री स्वयं उनके पास पधार रही थी। गुरुजनों की निश्रा प्राप्त करना हर विनीत शिष्य का मनेच्छित होता है। पूज्या श्री के आगमन से वे सामाजिक दायित्वों से मुक्त हो गई थी। अध्ययन के अन्तिम पड़ाव में गुरूवर्य्या श्री का साथ उनके लिए सुवर्ण संयोग था क्योंकि प्राय: शोध कार्य के दौरान पूज्याश्री उनसे दूर रही थी।

शोध समय पूर्णाहुति पर था। परंतु इस बृहद कार्य को इतनी विषमताओं के भंवर में फँसकर पूर्णता तक पहुँचाना एक कठिन कार्य था। कार्य अपनी गति से चल रहा था और समय अपनी धुरी पर। सबमिशन डेट आने वाली थी किन्तु कम्पोजिंग एवं प्रूफ रीडिंग आदि का काफी कार्य शेष था।

पूज्याश्री के प्रति अनन्य समर्पित श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा को जब इस स्थिति के बारे में ज्ञात हुआ तो उन्होंने युनिवर्सिटी द्वारा समयावधि बढ़ाने हेतु अर्जी पत्र देने का सुझाव दिया। उनके हार्दिक प्रयासों से 6 महीने का एक्सटेंशन प्राप्त हुआ। इधर पूज्या श्री तो शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा सम्पन्न कर अन्य क्षेत्रों की ओर बढ़ने की इच्छुक थी। परंतु भविष्य के गर्भ में क्या छुपा है यह कोई नहीं जानता। कुछ विशिष्ट कारणों के चलते कोलकाता भवानीपुर स्थित शंखेश्वर मन्दिर की प्रतिष्ठा चातुर्मास के बाद होना निश्चित हुआ। अत: अब आठ-दस महीने तक बंगाल विचरण निश्चित था। सौम्याजी को अप्रतिम संयोग मिला था कार्य पूर्णता के लिए।

शासन देव उनकी कठिन से कठिन परीक्षा ले रहा था। शायद विषमताओं की अग्नि में तपकर वे सौम्याजी को खरा सोना बना रहे थे। कार्य अपनी पूर्णता की ओर पहुँचता इसी से पूर्व उनके द्वारा लिखित 23 खण्डों में से एक खण्ड की मूल कॉपी गुम हो गई। पुन: एक खण्ड का लेखन और समयावधि की अल्पता ने समस्याओं का चक्रव्यूह सा बना दिया। कुछ भी समझ में नहीं आ रहा था। जिनपूजा क्रिया विधानों का एक मुख्य अंग है अत: उसे गौण करना या छोड़ देना भी संभव नहीं था। चांस लेते हुए एक बार पुन: Extension हेतु निवेदन पत्र भेजा गया। मुनि जीवन की कठिनता एवं शोध कार्य की विशालता के मद्देनजर एक बार पुन: चार महीने की अवधि युनिवर्सिटी के द्वारा प्राप्त हुई।

शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा निमित्त सम्पूर्ण साध्वी मंडल का चातुर्मास बकुल बगान स्थित लीलीजी मणिलालजी सुखानी के नूतन बंगले में होना निश्चित हुआ।

पूज्याश्री ने खडगपुर, टाटानगर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। पाँच-छह साध्वीजी अध्ययन हेतु पौशाल में ही रूके थे। श्री जिनरंगसूरि पौशाल कोलकाता बड़ा बाजार में स्थित है। साधु-साध्वियों के लिए यह अत्यंत शाताकारी स्थान है। सौम्याजी को बनारस से कोलकाता लाने एवं अध्ययन पूर्ण करवाने में पौशाल के ट्रस्टियों की विशेष भूमिका रही है। सौम्याजी ने अपना अधिकांश अध्ययन काल वहाँ व्यतीत किया।

ट्रस्टीगण श्री कान्तिलालजी, कमलचंदजी, विमलचंदजी, मणिलालजी आदि ने भी हर प्रकार की सुविधाएँ प्रदान की। संघ-समाज के सामान्य दायित्वों से बचाए रखा। इसी अध्ययन काल में बीकानेर हाल कोलकाता निवासी श्री खेमचंदजी बांठिया ने आत्मीयता पूर्वक सेवाएँ प्रदान कर इन लोगों को निश्चिन्त

रखा। इसी तरह अनन्य सेवाभावी श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत (लालाबाबू) जो सौम्याजी को बहनवत मानते हैं उन्होंने एक भाई के समान उनकी हर आवश्यकता का ध्यान रखा। कलकत्ता संघ सौम्याजी के लिए परिवारवत ही हो गया था। सम्पूर्ण संघ की एक ही भावना थी कि उनका अध्ययन कोलकाता में ही पूर्ण हो।

पूज्याश्री टाटानगर से कोलकाता की ओर पधार रही थी। सुयोग्या साध्वी सम्यग्दर्शनाजी उग्र विहार कर गुरुवर्य्याश्री के पास पहुँची थी। सौम्याजी निश्चिंत थी कि इस बार चातुर्मासिक दायित्व सुयोग्या सम्यग दर्शनाजी महाराज संभालेंगे। वे अपना अध्ययन उचित समयावधि में पूर्ण कर लेंगे। परंतु परिस्थिति विशेष से सम्यगजी महाराज का चातुर्मास खडगपुर ही हो गया।

सौम्याजी की शोधयात्रा में संघर्षों की समाप्ति ही नहीं हो रही थी। पुस्तक लेखन, चातुर्मासिक जिम्मेदारियाँ और प्रतिष्ठा की तैयारियाँ कोई समाधान दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था। अध्ययन की महत्ता को समझते हुए पूज्याश्री एवं अमिताजी सुखानी ने उन्हें चातुर्मासिक दायित्वों से निवृत्त रहने का अनुनय किया किन्तु गुरु की शासन सेवा में सहयोगी बनने के लिए इन्होंने दो महीने गुरुवर्य्या श्री के साथ चातुर्मासिक दायित्वों का निर्वाह किया। फिर वह अपने अध्ययन में जुट गई।

कई बार मन में प्रश्न उठता कि हमारी प्यारी सौम्या इतना साहस कहाँ से लाती है। किसी कवि की पंक्तियाँ याद आ रही है–

सूरज से कह दो बेशक वह, अपने घर आराम करें।
चाँद सितारे जी भर सोएं, नहीं किसी का काम करें।
अगर अमावस से लड़ने की जिद कोई कर लेता है।
तो सौम्य गुणा सा जुगनु सारा, अंधकार हर लेता है।।

जिन पूजा एक विस्तृत विषय है। इसका पुनर्लेखन तो नियत अवधि में हो गया परंतु कम्पोजिंग आदि नहीं होने से शोध प्रबंध के तीसरे एवं चौथे भाग को तैयार करने के लिए समय की आवश्यकता थी। अब तीसरी बार लाडनूं विश्वविद्यालय से Extension मिलना असंभव प्रतीत हो रहा था।

श्री विजयेन्द्रजी संखलेचा समस्त परिस्थितियों से अवगत थे। उन्होंने पूज्य गुरूवर्य्या श्री से निवेदन किया कि सौम्याजी को पूर्णत: निवृत्ति देकर कार्य शीघ्रातिशीघ्र करवाया जाए। विश्वविद्यालय के तत्सम्बन्धी नियमों के बारे में पता

करके डेढ़ महीने की अन्तिम एवं विशिष्ट मौहलत दिलवाई। अब देरी होने का मतलब था Rejection of Work by University अत: त्वरा गति से कार्य चला।

सौम्याजी पर गुरुजनों की कृपा अनवरत रही है। पूज्य गुरूवर्य्या सज्जन श्रीजी म.सा. के प्रति वह विशेष श्रद्धा प्रणत हैं। अपने हर शुभ कर्म का निमित्त एवं उपादान उन्हें ही मानती हैं। इसे साक्षात गुरु कृपा की अनुश्रुति ही कहना होगा कि उनके समस्त कार्य स्वत: ग्यारस के दिन सम्पन्न होते गए। सौम्याजी की आन्तरिक इच्छा थी कि पूज्याश्री को समर्पित उनकी कृति पूज्याश्री की पुण्यतिथि के दिन विश्वविद्यालय में Submit की जाए और निमित्त भी ऐसे ही बने कि Extension लेते-लेते संयोगवशात पुन: वही तिथि और महीना आ गया।

23 दिसम्बर 2012 मौन ग्यारस के दिन लाडनूं विश्वविद्यालय में 4 भागों में वर्गीकृत 23 खण्डीय Thesis जमा की गई। इतने विराट शोध कार्य को देखकर सभी हतप्रभ थे। 5556 पृष्ठों में गुम्फित यह शोध कार्य यदि शोध नियम के अनुसार तैयार किया होता तो 11000 पृष्ठों से अधिक हो जाते। यह सब गुरूवर्य्या श्री की ही असीम कृपा थी।

पूज्या शशिप्रभा श्रीजी म.सा. की हार्दिक इच्छा थी कि सौम्याजी के इस ज्ञानयज्ञ का सम्मान किया जाए जिससे जिन शासन की प्रभावना हो और जैन संघ गौरवान्वित बने।

भवानीपुर–शंखेश्वर दादा की प्रतिष्ठा का पावन सुयोग था। श्रुतज्ञान के बहुमान रूप 23 ग्रन्थों का भी जुलूस निकाला गया। सम्पूर्ण कोलकाता संघ द्वारा उनकी वधामणी की गई। यह एक अनुमोदनीय एवं अविस्मरणीय प्रसंग था।

बस मन में एक ही कसक रह गई कि मैं इस पूर्णाहुति का हिस्सा नहीं बन पाई।

आज सौम्याजी की दीर्घ शोध यात्रा को पूर्णता के शिखर पर देखकर नि:सन्देह कहा जा सकता है कि पूज्या प्रवर्त्तिनी म.सा. जहाँ भी आत्म साधना में लीन है वहाँ से उनकी अनवरत कृपा दृष्टि बरस रही है। शोध कार्य पूर्ण होने के बाद भी सौम्याजी को विराम कहाँ था? उनके शोध विषय की त्रैकालिक प्रासंगिकता को ध्यान में रखते हुए उन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। पुस्तक प्रकाशन सम्बन्धी सभी कार्य शेष थे तथा पुस्तकों का प्रकाशन कोलकाता से ही हो रहा था। अत: कलकत्ता संघ के प्रमुख श्री कान्तिलालजी मुकीम, विमलचंदजी महमवाल, श्राविका श्रेष्ठा प्रमिलाजी महमवाल, विजयेन्द्रजी

संखलेचा आदि ने पूज्याश्री के सम्मुख सौम्याजी को रोकने का निवेदन किया। श्री चन्द्रकुमारजी मुणोत, श्री मणिलालजी दूसाज आदि भी निवेदन कर चुके थे। यद्यपि अजीमगंज दादाबाड़ी प्रतिष्ठा के कारण रोकना असंभव था परंतु मुकिमजी के अत्याग्रह के कारण पूज्याश्री ने उन्हें कुछ समय के लिए वहाँ रहने की आज्ञा प्रदान की।

गुरूवर्य्या श्री के साथ विहार करते हुए सौम्यागुणाजी को तीन Stop जाने के बाद वापस आना पड़ा। दादाबाड़ी के समीपस्थ शीतलनाथ भवन में रहकर उन्होंने अपना कार्य पूर्ण किया। इस तरह इनकी सम्पूर्ण शोध यात्रा में कलकत्ता एक अविस्मरणीय स्थान बनकर रहा।

क्षणै: क्षणै: बढ़ रहे उनके कदम अब मंजिल पर पहुँच चुके हैं। आज जो सफलता की बहुमंजिला इमारत इस पुस्तक श्रृंखला के रूप में देख रहे हैं वह मजबूत नींव इन्होंने अपने उत्साह, मेहनत और लगन के आधार पर रखी है। सौम्यगुणाजी का यह विशद् कार्य युग-युगों तक एक कीर्तिस्तम्भ के रूप में स्मरणीय रहेगा। श्रुत की अमूल्य निधि में विधि-विधान के रहस्यों को उजागर करते हुए उन्होंने जो कार्य किया है वह आने वाली भावी पीढ़ी के लिए आदर्श रूप रहेगा। लोक परिचय एवं लोकप्रसिद्धि से दूर रहने के कारण ही आज वे इस बृहद् कार्य को सम्पन्न कर पाई हैं। मैं परमात्मा से यही प्रार्थना करती हूँ कि वे सदा इसी तरह श्रुत संवर्धन के कल्याण पथ पर गतिशील रहे। अंतत: उनके अडिग मनोबल की अनुमोदना करते हुए यही कहूँगी–

प्रगति शिला पर चढ़ने वाले बहुत मिलेंगे,
कीर्तिमान करने वाला तो विरला होता है।
आंदोलन करने वाले तो बहुत मिलेंगे,
दिशा बदलने वाला कोई निराला होता है।
तारों की तरह टिम-टिमाने वाले अनेक होते हैं,
पर सूरज बन रोशन करने वाला कोई एक ही होता है।
समय गंवाने वालों से यह दुनिया भरी है,
पर इतिहास बनाने वाला कोई सौम्य सा ही होता है।
प्रशंसा पाने वाले जग में अनेक मिलेंगे,
प्रिय बने सभी का ऐसा कोई सज्जन ही होता है ।।

●

हार्दिक अनुमोदना

किसी कवि ने बहुत ही सुन्दर कहा है–

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचे सो घड़ा, ऋतु आवत फल होय।।

हर कार्य में सफलता समय आने पर ही प्राप्त होती है। एक किसान बीज बोकर साल भर तक मेहनत करता है तब जाकर उसे फसल प्राप्त होती है। चार साल तक College में मेहनत करने के बाद विद्यार्थी Doctor, Engineer या MBA होता है।

साध्वी सौम्यगुणाजी आज सफलता के जिस शिखर पर पहुँची है उसके पीछे उनकी वर्षों की मेहनत एवं धैर्य नींव रूप में रहे हुए हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व सौम्याजी का आगमन हमारे मण्डल में एक छोटी सी गुड़िया के रूप में हुआ था। व्यवहार में लघुता, विचारों में सरलता एवं बुद्धि की श्रेष्ठता उनके प्रत्येक कार्य में तभी से परिलक्षित होती थी। ग्यारह वर्ष की निशा जब पहली बार पूज्याश्री के पास वैराग्यवासित अवस्था में आई तब मात्र चार माह की अवधि में प्रतिक्रमण, प्रकरण, भाष्य,कर्मग्रन्थ, प्रात:कालीन पाठ आदि कंठस्थ कर लिए थे। उनकी तीव्र बुद्धि एवं स्मरण शक्ति की प्रखरता के कारण पूज्य छोटे म.सा. (पूज्य शशिप्रभा श्रीजी म.सा.) उन्हें अधिक से अधिक चीजें सिखाने की इच्छा रखते थे।

निशा का बाल मन जब अध्ययन से उक्ता जाता और बाल सुलभ चेष्टाओं के लिए मन उत्कंठित होने लगता, तो कई बार वह घंटों उपाश्रय की छत पर तो कभी सीढ़ियों में जाकर छुप जाती ताकि उसे अध्ययन न करना पड़े। परंतु यह उसकी बाल क्रीड़ाएँ थी। 15-20 गाथाएँ याद करना उसके लिए एक सहज बात थी। उनके अध्ययन की लगन एवं सीखने की कला आदि के अनुकरण की प्रेरणा आज भी छोटे म.सा. आने वाली नई मंडली को देते हैं। सूत्रागम अध्ययन, ज्ञानार्जन, लेखन, शोध आदि के कार्य में उन्होंने जो श्रृंखला प्रारम्भ

की है आज सज्जनमंडल में उसमें कई कड़ियाँ जुड़ गई हैं परन्तु मुख्य कड़ी तो मुख्य ही होती है। ये सभी के लिए प्रेरणा बन रही हैं किन्तु इनके भीतर जो प्रेरणा आई वह कहीं न कहीं पूज्य गुरुवर्य्या श्री की असीम कृपा है।

उच्च उड़ान नहीं भर सकते
तुच्छ बाहरी चमकीले पर
महत कर्म के लिए चाहिए
महत प्रेरणा बल भी भीतर

यह महत प्रेरणा गुरु कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। विनय, सरलता, शालीनता, ऋजुता आदि गुण गुरुकृपा की प्राप्ति के लिए आवश्यक है।

सौम्याजी का मन शुरू से सीधा एवं सरल रहा है। सांसारिक कपट-माया या व्यवहारिक औपचारिकता निभाना इनके स्वभाव में नहीं है। पूज्य प्रवर्तिनीजी म.सा. को कई बार ये सहज में कहती **'महाराज श्री!' मैं तो आपकी कोई सेवा नहीं करती, न ही मुझमें विनय है, फिर मेरा उद्धार कैसे होगा, मुझे गुरु कृपा कैसे प्राप्त होगी?' तब पूज्याश्री फरमाती– 'सौम्या! तेरे ऊपर तो मेरी अनायास कृपा है, तूं चिंता क्यों करती है? तूं तो महान साध्वी बनेगी।'** आज पूज्याश्री की ही अन्तस शक्ति एवं आशीर्वाद का प्रस्फोटन है कि लोकैषणा, लोक प्रशंसा एवं लोक प्रसिद्धि के मोह से दूर वे श्रुत सेवा में सर्वात्मना समर्पित हैं। जितनी समर्पित वे पूज्या श्री के प्रति थी उतनी ही विनम्र अन्य गुरुजनों के प्रति भी। गुरु भगिनी मंडल के कार्यों के लिए भी वे सदा तत्पर रहती हैं। चाहे बड़ों का कार्य हो, चाहे छोटों का उन्होंने कभी किसी को टालने की कोशिश नहीं की। चाहे प्रियदर्शना श्रीजी हो, चाहे दिव्यदर्शना श्रीजी, चाहे शुभदर्शनाश्रीजी हो, चाहे शीलगुणा जी आज तक सभी के साथ इन्होंने लघु बनकर ही व्यवहार किया है। कनकप्रभाजी, संयमप्रज्ञाजी आदि लघु भगिनी मंडल के साथ भी इनका व्यवहार सदैव सम्मान, माधुर्य एवं अपनेपन से युक्त रहा है। ये जिनके भी साथ चातुर्मास करने गई हैं उन्हें गुरुवत सम्मान दिया तथा उनकी विशिष्ट आन्तरिक मंगल कामनाओं को प्राप्त किया है। पूज्या विनीता श्रीजी म.सा., पूज्या मणिप्रभाश्रीजी म.सा., पूज्या हेमप्रभा श्रीजी म.सा., पूज्या सुलोचना श्रीजी म.सा., पूज्या विद्युतप्रभाश्रीजी म.सा. आदि की इन पर विशेष कृपा रही है। पूज्य उपाध्याय श्री मणिप्रभसागरजी म.सा., आचार्य श्री

पद्मसागरसूरिजी म.सा., आचार्य श्री कीर्तियशसूरिजी आदि ने इन्हें अपना स्नेहाशीष एवं मार्गदर्शन दिया है। आचार्य श्री राजयशसूरिजी म.सा., पूज्य भ्राता श्री विमलसागरजी म.सा. एवं पूज्य वाचंयमा श्रीजी (बहन) म.सा. इनका Ph.D. एवं D.Litt. का विषय विधि-विधानों से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें 'विधिप्रभा' नाम से ही बुलाते हैं।

पूज्या शशिप्रभाजी म.सा. ने अध्ययन काल के अतिरिक्त इन्हें कभी भी अपने से अलग नहीं किया और आज भी हम सभी गुरु बहनों की अपेक्षा गुरु निश्रा प्राप्ति का लाभ इन्हें ही सर्वाधिक मिलता है। पूज्याश्री के चातुर्मास में अपने विविध प्रयासों के द्वारा चार चाँद लगाकर ये उन्हें और भी अधिक जानदार बना देती हैं।

तप-त्याग के क्षेत्र में तो बचपन से ही इनकी विशेष रुचि थी। नवपद की ओली का प्रारम्भ इन्होंने गृहस्थ अवस्था में ही कर दिया था। इनकी छोटी उम्र को देखकर छोटे म.सा. ने कहा– देखो! तुम्हें तपस्या के साथ उतनी ही पढ़ाई करनी होगी तब तो ओलीजी करना अन्यथा नहीं। ये बोली– मैं रोज पन्द्रह नहीं बीस गाथा करूंगी आप मुझे ओलीजी करने दीजिए और उस समय ओलीजी करके सम्पूर्ण प्रातःकालीन पाठ कंठाग्र किये। बीसस्थानक, वर्धमान, नवपद, मासक्षमण, श्रेणी तप, चत्तारि अट्ठ दस दोय, पैंतालीस आगम, ग्यारह गणधर, चौदह पूर्व, अट्ठाईस लब्धि, धर्मचक्र, पखवासा आदि कई छोटे-बड़े तप करते हुए इन्होंने अध्ययन एवं तपस्या दोनों में ही अपने आपको सदा अग्रसर रखा।

आज उनके वर्षों की मेहनत की फलश्रुति हुई है। जिस शोध कार्य के लिए वे गत 18 वर्षों से जुटी हुई थी उस संकल्पना को आज एक मूर्त्त स्वरूप प्राप्त हुआ है। अब तक सौम्याजी ने जिस धैर्य, लगन, एकाग्रता, श्रुत समर्पण एवं दृढ़निष्ठा के साथ कार्य किया है वे उनमें सदा वृद्धिंगत रहे। पूज्य गुरुवर्य्या श्री के नक्षे कदम पर आगे बढ़ते हुए वे उनके कार्यों को और नया आयाम दें तथा श्रुत के क्षेत्र में एक नया अवदान प्रस्तुत करें। इन्हीं शुभ भावों के साथ–

गुरु भगिनी मण्डल

प्राक्कथन

'मुद्रा' योग विज्ञान का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, अध्यात्म साधना का आवश्यक चरण है तथा शास्त्रीय विद्याओं में विशिष्टतम विद्या है। मानव मात्र के समग्र विकास के लिए मुद्रा योग अत्यन्त ही उपयोगी है। भारतीय ऋषि-महर्षियों ने मन, बुद्धि एवं शरीर को शान्त रखने के लिए विभिन्न मुद्राओं का प्रयोग किया था। इस विज्ञान के द्वारा हम आज भी आध्यात्मिक, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति प्राप्त करके भव-भवान्तर को मोक्ष साध्य बना सकते हैं।

मानव मात्र की अन्तः शक्तियाँ असीम हैं किन्तु वे हमारी असीमित कल्पना के विस्तृत क्षेत्र से भी परे हैं। भौतिक स्तर पर जीवन यात्रा का निर्वहन करने वाला व्यक्ति उन अन्तः शक्तियों को न पहचान सकता है और न ही उनका सार्थक उपयोग कर पाता है। वह सामान्यतः अज्ञानजनित बुद्धि एवं मोहादि के वशीभूत हुआ बाह्य उपलब्धियों को ही वास्तविक मानता है। मुद्रा एक ऐसी पद्धति है जिसके माध्यम से हम जड़-चेतन का भेद ज्ञान करते हुए यथार्थता के निकट पहुँच सकते हैं, पौद्गलिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का मूल्यांकन कर सकते हैं और अन्तरंग शक्तियों को जागृत करने हेतु प्रयत्नशील हो सकते हैं। प्रत्येक मानव का अन्तिम लक्ष्य यही होना चाहिए कि उसे अपनी निजी शक्तियों का बोध हो और अपने स्वरूप की पहचान हो। एक बार चेतना के उच्च स्तरों की झलक दिख जाये तो मायाजाल के सभी झूठे प्रपंच एवं समस्याएँ समाप्त हो सकती है।

इस उच्च भूमिका पर आरोहण करने के लिए चित्त का एकाग्र होना आवश्यक है। अधिकांश पद्धतियों में एकाग्रता के महत्त्व पर जोर दिया गया है। एकाग्रता द्वारा हम बहिरंग जीवन की ओर प्रवाहित होती हुई चेतना को अन्तरंग क्षेत्रों की ओर मोड़ सकते हैं। यहाँ प्रश्न उठता है कि एकाग्रता क्या है? तो जवाब में कहा जा सकता है कि अपनी चेतन धारा को सभी बाह्य विषयों एवं विचारों से हटाकर किसी विशेष विचार बिन्दु पर केन्द्रित

करना। यह कार्य सरल नहीं है। हमारी चेतना को विविधता प्रिय है। एक से दूसरे और दूसरे से तीसरे विषय पर मंडराने की आदत बहुत पुरानी है इसे एक विषय पर केन्द्रित करना संकल्प साध्य है।

मुद्राएँ शरीर एवं चित्त स्थिरीकरण के लिए ब्रह्मास्त्र का कार्य करती हैं। जैसे ब्रह्मास्त्र का प्रयोग कभी निष्फल नहीं जाता वैसे ही सुविधि युक्त किया गया मुद्राभ्यास स्थिरता गुण को विकसित करता है। घेरण्ड संहिता में सुस्पष्ट कहा गया है कि स्थिरता के लिए मुद्रायोग को साधना चाहिए।

स्थैर्य गुण बहिरंग व अन्तरंग समग्र पक्षों से अत्यन्त लाभदायी है। हम अनुभव करें तो नि:सन्देह महसूस हो सकेगा कि स्थिरता के पलों में व्यक्ति की चेतना अबाध रूप से प्रवाहित होने लगती है। इस अवस्था में अवचेतन मन में छिपे मनोवैज्ञानिक प्रतिरूप चेतन मन के स्तर तक ऊपर उठ आते हैं तथा अनावृत्त होने लगते हैं।

सामान्य तौर पर मानसिक विक्षेपों के कारण हम अपनी आंतरिक शक्तियों से संबंध स्थापित नहीं कर पाते अथवा उन्हें अभिव्यक्त नहीं कर पाते। जबकि एकाग्रता के क्षणों में ही हम अपने व्यक्तित्व के आंतरिक पक्षों को समझना प्रारंभ करते हैं। इस प्रकार एकाग्र चित्त के परिणाम बहुत महत्त्वपूर्ण है। मुद्रा विज्ञान से इन परिणामों को अवश्यंभावी प्राप्त किया जाता है।

मुद्राएँ शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन बनाए रखती है। हठयोग संबंधी मुद्राभ्यास में बन्ध का प्रयोग भी किया जाता है स्वभावत: मुद्रा और बन्ध हमारे शरीर के स्नायु जालकों तथा अन्त:स्रावी ग्रन्थियों को उत्तेजित करते हैं और शरीर की जैव-ऊर्जाओं को सक्रिय करते हैं। कभी-कभी मुद्राएँ आंतरिक, मानसिक या अतीन्द्रिय भावनाओं की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के रूप में भी कार्य करती हैं। यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है।

हमारे शरीर में अतीन्द्रिय शक्तियों से युक्त एक यौगिक पथ है जिसे मेरूदण्ड कहते हैं। इस मार्ग पर तथा इसके ऊपरी और निचले हिस्से में अनेक शक्तियाँ मौजूद हैं। साथ ही इस मार्गस्थित शक्तियों के इर्द-गिर्द विभिन्न स्नायु जाल बिछे हुए हैं। ये जाल मस्तिष्क केन्द्रों और अंत:स्रावी ग्रंथियों से सीधे जुड़े होते हैं। यौगिक मुद्राओं से स्नायु मंडल जागृत होकर शरीर में अनेक मनोवैज्ञानिक और जीव-रासायनिक परिवर्तन करते हैं। इन स्थितियों

में अदृश्य शक्ति सम्पन्न षट्चक्रों का भेदन होता है और चेतन धारा ऊर्ध्वगामी बनती है।

मुद्रा तत्त्व परिवर्तन की अपूर्व क्रिया है। हमारा शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित माना जाता है। इन तत्त्वों की विकृति के कारण ही प्रकृति में असंतुलन और शरीर में रोग पैदा होते हैं। हस्त मुद्राएँ पंच तत्त्वों को संतुलित करने का सशक्त माध्यम है क्योंकि शरीर की पाँचों अंगुलियाँ पंच तत्त्व की प्रतिनिधि है, जिन्हें इन अंगुलियों की मदद से घटा-बढ़ाकर संतुलित किया जा सकता है। शरीर विज्ञान के अनुसार अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के अग्रभाग से जोड़ा जाए तो उससे सम्बन्धित तत्त्व स्थिर हो जाता है। जैसे अंगूठा अग्नि तत्त्व का स्थान है, तर्जनी वायु तत्त्व का, मध्यमा आकाश तत्त्व का, अनामिका पृथ्वी तत्त्व का और कनिष्ठिका जल तत्त्व का प्रतीक है। इस प्रकार अंगूठे के स्पर्श से संबंधित अंगुलियों के तत्त्व जो शरीर में व्याप्त हैं, वे प्रभावित होते हैं।

अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के निचले हिस्से अर्थात मूल पर्व पर लगाने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व की शरीर में वृद्धि होती है। यदि अंगुली को मोड़कर अंगूठे की जड़ में अर्थात उसके मूल आधार पर रखने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व का शरीर में ह्रास होता है। इस प्रकार विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से पंच तत्त्वों को घटा-बढ़ाकर सन्तुलित किया जा सकता है। इससे शरीर को स्वास्थ्य लाभ मिलता है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह उठता है कि अधिकांश मुद्राएँ हाथों से ही क्यों की जाती है? यदि गहराई से अवलोकन करें तो परिज्ञात होता है कि शरीर के सक्रिय अंगों में हाथ प्रमुख है। हथेली में एक विशेष प्रकार की प्राण ऊर्जा अथवा शक्ति का प्रवाह निरन्तर होता रहता है। इसी कारण शरीर के किसी भी भाग में दु:ख, दर्द, पीड़ा होने पर सहज ही हाथ वहाँ चला जाता है। अंगुलियों में अपेक्षाकृत संवेदनशीलता अधिक होती है इसी कारण अंगुलियों से ही नाड़ी को देखा जाता है। जिससे मस्तिष्क में नब्ज की कार्यविधि का संदेश शीघ्र पहुँच जाता है। रेकी चिकित्सा में हथेली का ही उपयोग होता है। रत्न चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के नगीने अंगूठी के माध्यम से हाथ की अंगुलियों में ही पहने जाते हैं जिनकी तरंगों के प्रभाव से शरीर को स्वस्थ रखा जा सकता है।

एक्यूप्रेशर चिकित्सा के अनुसार हथेली में ही सम्पूर्ण शरीर के संवदेन बिन्दु होते हैं। सुजोक बायल मेरेडियन के सिद्धान्तानुसार अंगुलियों से ही शरीर के विभिन्न अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को नियन्त्रित और संतुलित किया जा सकता है। हस्त रेखा विशेषज्ञ हथेली देखकर व्यक्ति के वर्तमान, भूत और भविष्य की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को बतला सकते हैं। कहने का आशय यही है कि हाथ, हथेली और अंगुलियों का मनुष्य की जीवन शैली से सीधा सम्बन्ध होता है। ये मुद्राएँ शरीरस्थ चेतना के शक्ति केन्द्रों में रिमोट कन्ट्रोल के समान कार्य करती हैं फलतः स्वास्थ्य रक्षा और रोग निवारण होता है।

'मुद्रा' यह किसी एक धर्म या सम्प्रदाय से अथवा हिन्दु या बौद्ध धर्म से ही सम्बन्धित नहीं है। ईसाई धर्म में भी हस्त मुद्राएँ देवता एवं संतों के अभिप्राय तथा अभिव्यक्ति के माध्यम रहे हैं। ईसा मसीह द्वारा ऊपर किए गए दाएँ हाथ की मध्यमा एवं तर्जनी ऊर्ध्व की ओर, अनामिका एवं कनिष्ठका हथेली में मुड़ी हुई तथा अंगूठा उन दोनों को आवेष्टित करते हुए ऐसी जो मुद्रा दर्शायी जाती है वह कृपा, क्षमा एवं देवी आशीष की सूचक है। इसी प्रकार मरियम की मूर्ति में जो मुद्रा दिखाई देती है वह मातृत्व एवं ममत्त्व भाव की सूचक है। यह भगवान के इच्छाओं के स्वीकार की भी द्योतक है।

हिन्दू और बौद्ध धर्म में प्रयुक्त कई मुद्राएँ विशिष्ट देवी-देवताओं आदि की सूचक है। मुख्यतया तांत्रिक मुद्राएँ विशेष प्रसंगों में पादरी तथा लामाओं द्वारा धारण की जाती है। इस प्रकार मुद्रा विज्ञान समस्त धर्मपरम्परा सम्मत है।

मुद्रा योग से संबन्धित यह शोध कार्य सात खण्डों में किया गया है।

प्रथम खण्ड में मुद्रा का स्वरूप विश्लेषण करते हुए तत्संबंधी कई मूल्यवान तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें मुद्रा योग का ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक पक्ष भी प्रस्तुत किया है जिससे शोधार्थी एवं आत्मार्थी आवश्यक जानकारी एक साथ प्राप्त कर सकते हैं। इस खण्ड का अध्ययन करने पर परवर्ती खण्डों की विषय वस्तु भी स्पष्ट हो जाती है इस प्रकार यह मुख्य आधारभूत होने से इस खण्ड को प्रथम क्रम पर रखा गया है।

तदनन्तर सर्व प्रकार की मुद्राओं का उद्भव नृत्य एवं नाट्य कला से माना जाता है। विश्व की भौगोलिक गतिविधियों के अनुसार आज से लगभग **बयालीस हजार तीन वर्ष साढ़े आठ मास न्यून एक कोटाकोटि सागरोपम पूर्व** भगवान ऋषभदेव हुए, जिन्हें वैदिक परम्परा में भी युग के आदि कर्त्ता माना गया है। जैन आगमकार कहते हैं कि उस समय मनुष्यों का जीवन निर्वाह कल्पवृक्ष से होता था। धीर-धीरे काल का सुप्रभाव निस्तेज होने लगा, उससे भोजन आदि की कई समस्याएं उपस्थित हुई। तब ऋषभदेव ने पिता प्रदत्त राज्य पद का संचालन करते हुए लोगों को भोजन पकाने, अन्न उत्पादन करने, वस्त्र बुनने आदि का ज्ञान दिया। वे पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन आमोद-प्रमोद तथा नीति नियम पूर्वक जी सकें, एतदर्थ पुरुषों को 72 एवं स्त्रियों को 64 प्रकार की विशिष्ट कलाएँ सिखाई। उनमें नृत्य-नाट्य और मुद्रा कला का भी प्रशिक्षण दिया। इससे सिद्ध होता है कि मुद्रा विज्ञान की परम्परा आदिकालीन एवं प्राचीनतम है। इसलिए नाट्य मुद्राओं को द्वितीय खण्ड में स्थान दिया गया है।

प्रश्न हो सकता है कि नाट्य मुद्राओं पर किया गया यह कार्य कितना उपयोगी एवं प्रासंगिक है? इस सम्बन्ध में इतना स्पष्ट है कि जीवन में स्वाभाविक मुद्रा का अद्भुत प्रभाव पड़ता है– 1. नृत्य में प्रायः सभी मुद्राएँ सहज होती है।

2. जो लोग नृत्य-नाट्य आदि में रूचि रखते हैं वे इस कला के मर्म को समझ सकते हैं तथा उसकी उपयोगिता के बारे में अन्यों को ज्ञापित कर इस कला का गौरव बढ़ा सकते हैं।

3. जो नृत्य आदि कला सीखने में उत्साही एवं उद्यमशील हैं वे मुद्राओं से होते फायदों के बारे में यदि जाने तो इस कला के प्रति सर्वात्मना समर्पित हो एक स्वस्थ जीवन की उपलब्धि करते हुए दर्शकों के चित्त को पूरी तरह आनन्दित कर सकते हैं। साथ ही दर्शकों का शरीर एवं मन प्रभावित होने से वे भी निरोग तथा चिन्तामुक्त जीवन से परिवार एवं समाज विकास में ठोस कार्य कर सकते हैं।

4. नृत्य कला में प्रयुक्त मुद्राओं से होने वाले सुप्रभावों की प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध हो तो इसके प्रति उपेक्षित जनता भी अनायास जुड़ सकती

है और हाथ-पैरों के सहज संचालन से कई अनूठी उपलब्धियाँ प्राप्त कर सकती हैं।

5. यदि नाट्याभिनय में दक्षता हासिल हो जाये तो प्रतिष्ठा-दीक्षा आदि महोत्सव, गुरू भगवन्तों के नगर प्रवेश, प्रभु भक्ति आदि प्रसंगों में उपस्थित जन समूह को भक्ति मग्न कर सकते हैं। साथ ही शुभ परिणामों की भावधारा का वेग बढ़ जाने से पूर्वबद्ध अशुभ कर्मों को क्षीणकर परम पद को प्राप्त किया जा सकता है।

6. कुछ लोगों में नृत्य कला का अभाव होता है ऐसे व्यक्तियों को इसका मूल्य समझ में आ जाये तो वे भक्ति माहौल में स्वयं को एकाकार कर सकते हैं। उस समय हाथ आदि अंगों का स्वाभाविक संचालन होने से षट्चक्र आदि कई शक्ति केन्द्र प्रभावित होते हैं और उससे एक आरोग्य वर्धक जीवन प्राप्त होता है तथा अंतरंग की दूषित वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं।

7. हमारे दैनिक जीवन व्यवहार में हर्ष-शोक, राग-द्वेष, आनन्द-विषाद आदि परिस्थितियों के आधार पर जो शारीरिक आकृतियाँ बनती है इन समस्त भावों को नाट्य में भी दर्शाया जाता है इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ समस्त देहधारियों (मानवों) की जीवन चर्या का अभिन्न अंग है।

नाट्य मुद्राओं पर शोध करने का एक ध्येय यह भी है कि किसी संत पुरुष या अलौकिक पुरुष द्वारा सिखाया गया ज्ञान कभी निरर्थक नहीं हो सकता। इस प्रकार नाट्य मुद्राएँ अनेक दृष्टियों से मूल्यवान हैं।

तदनन्तर जैन शास्त्रों में वर्णित मुद्राओं को महत्त्व देते हुए उन्हें तीसरे खण्ड में गुम्फित किया गया है। क्योंकि जैन धर्म अनादिनिधन होने के साथ-साथ इस मुद्रा विज्ञान के आरम्भ कर्त्ता एवं युग के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान है। इन्हें जैन धर्म के आद्य संस्थापक भी माना जाता है।

मुद्रा सम्बन्धी चौथे खण्ड में हिन्दू परम्परा की मुद्राओं का आधुनिक परिशीलन किया गया है। हिन्दू धर्म में प्रचलित कई मुद्राओं का प्रभाव जैन आचार्यों पर पड़ा तथा देवपूजन आदि से संबंधित कतिपय मुद्राएँ यथावत स्वीकार भी कर ली गई ऐसा माना जाता है। वर्तमान में विवाह आदि कई संस्कार प्राय: हिन्दू पण्डितों के द्वारा ही करवाये जा रहे हैं इसलिए इसे चौथे क्रम पर रखा गया है। दूसरे, हिन्दू धर्म में सर्वाधिक क्रियाकाण्ड होता

है और उनमें मुद्रा प्रयोग होता ही है।

मुद्रा सम्बन्धी पाँचवें खण्ड में बौद्ध परम्परावर्ती मुद्राओं को सम्बद्ध किया गया है। यद्यपि भगवान महावीर और भगवान बुद्ध समकालीन थे फिर भी हिन्दू धर्म जैनों के निकट माना जाता है। यही कारण है कि अनेक कर्मकाण्डों का प्रभाव जैन अनुयायियों पर पड़ा। आज भी जैन परम्परा के लोग हिन्दू मन्दिरों में बिना किसी भेद-भाव के चले जाते हैं जबकि बौद्ध धर्म के प्रति ऐसा झुकाव नहीं देखा जाता।

हिन्दू धर्म भारत के प्राय: सभी प्रान्तों में फैला हुआ है जबकि बौद्ध धर्म श्रमण परम्परा का संवाहक होने पर भी कुछ प्रान्तों में ही सिमट गया है। इन्हीं पहलुओं को ध्यान में रखते हुए बौद्ध मुद्राओं को पांचवाँ स्थान दिया गया है।

प्रस्तुत शोध के छठवें खण्ड में यौगिक मुद्राओं एवं सातवें खण्ड में आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं का विवेचन किया गया है। वर्तमान में बढ़ रही समस्याओं एवं अनावश्यक तनावों से छुटकारा पाने के लिए योगाभ्यास परमावश्यक है। इसलिए यौगिक एवं प्रचलित मुद्राओं को पृथक् स्थान देते हुए जन साधारण के लिए उपयोगी बनाया है। साथ ही ये मुद्राएँ किसी परम्परा विशेष से भी सम्बन्धित नहीं है।

इस तरह उपरोक्त सातों खण्ड में मुद्राओं का जो क्रम रखा गया है वह पाठकों के सुगम बोध के लिए है। इससे मुद्राओं की श्रेष्ठता या लघुता का निर्णय नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्वरूपत: प्रत्येक मुद्रा अपने आप में सर्वोत्तम है। किन्तु प्रयोक्ता के अनुसार जो जिसके लिए विशेष फायदा करती है वह श्रेष्ठ हो जाती है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि यह शोध कार्य केवल विधि स्वरूप तक ही सीमित नहीं है इसमें प्रत्येक मुद्रा का शब्दार्थ, उद्देश्य, उनके सुप्रभाव, प्रतीकात्मक अर्थ, कौनसी मुद्रा किस प्रसंग में की जाये आदि महत्त्वपूर्ण तथ्यों को भी उजागर किया गया है जिससे यह शोध समग्र पाठकों के लिए हमेशा उपादेय सिद्ध हो सकेगा।

प्रसंगानुसार मुद्रा चित्रों के सम्बन्ध में यह कहना चाहूंगी कि यद्यपि चित्रों को बनाने में पूर्ण सावधानी रखी गयी है फिर भी उसमें त्रुटियाँ रहना

संभव है। क्योंकि हाथ से मुद्रा बनाकर दिखाने में एवं चित्रकार की दृष्टि और समझ में अन्तर हो सकता है।

चित्र के माध्यम से प्रत्येक पहलु को स्पष्टत: दर्शाना शक्य नहीं होता, क्योंकि परिभाषानुसार हाथ को झुकाना, मोड़ना आदि अभ्यास पूर्वक ही संभव है।

प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त मुद्राओं के वर्णन को समझने में और ग्रन्थ कर्त्ता के अभिप्राय में अन्तर होने से कोई मुद्रा गलत बन गई हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ।

यहाँ निम्न बिन्दुओं पर भी अवश्य ध्यान दें-

1. हमारे द्वारा दर्शाए गए मुद्रा चित्रों के अंतर्गत कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ दर्शक के देखने के हिसाब से माना गया है तथा कुछ मुद्राओं में दायाँ हाथ प्रयोक्ता के अनुसार दर्शाया गया है।
2. कुछ मुद्राएँ बाहर की तरफ दिखाने की है उनमें चित्रकार ने मुद्रा बनाते समय वह Pose अपने मुख की तरफ दिखा दिया है।
3. कुछ मुद्राओं में एक हाथ को पार्श्व में दिखाना है उस हाथ को स्पष्ट दर्शाने के लिए उसे पार्श्व में न दिखाकर थोड़ा सामने की तरफ दिखाया है।
4. कुछ मुद्राएँ स्वरूप के अनुसार दिखाई नहीं जा सकती है अत: उनकी यथावत आकृति नहीं बन पाई हैं।
5. कुछ मुद्राएँ विधिवत बनने के बावजूद भी चित्र में स्पष्ट रूप से नहीं उभर रही हैं।
6. कुछ मुद्राओं के चित्र अत्यन्त कठिन होने से नहीं बन पाए हैं।

• मुद्रा योग का व्यापक रूप से बोध कराने वाला यह **प्रथम खण्ड** पाँच अध्यायों में वर्गीकृत है।

प्रथम अध्याय में विविध ग्रन्थों के अनुसार मुद्रा के भिन्न-भिन्न अर्थ बतलाते हुए उनमें व्यवहार एवं अध्यात्म मूलक परिभाषाओं को एक साथ प्रस्तुत किया है।

द्वितीय अध्याय में मुद्रा के रहस्यात्मक पक्षों को उद्घाटित करते हुए उन्हें आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि के समतुल्य सिद्ध किया है।

तृतीय अध्याय ऐतिहासिक तथ्य से सम्बन्धित है। इसमें मुख्य रूप

से मुद्रा का उद्भव कब, किन स्थितियों में हुआ? विभिन्न धर्म परम्पराओं में इसका अस्तित्व किस रूप में है? वर्तमान में इसका उपयोग उपचार के क्षेत्र में सर्वाधिक क्यों? ऐसे कई बिन्दुओं पर विचार किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में सभी परम्पराओं में प्राप्त मुद्राओं का तुलनात्मक पक्ष प्रस्तुत किया गया है।

पांचवाँ अध्याय उपसंहार के रूप में प्रतिपादित है।

• मुद्रा योग का **द्वितीय खण्ड** नाट्य मुद्राओं से सम्बन्धित है। इसमें भरत के नाट्यशास्त्र आदि ग्रन्थों में उपलब्ध मुद्राओं का वैज्ञानिक अनुशीलन करते हुए उसे सात अध्यायों में गुम्फित किया है।

प्रथम अध्याय में मुद्रा के भिन्न-भिन्न प्रभावों का प्रतिपादन किया गया है।

द्वितीय अध्याय भरत के नाट्य शास्त्र में विवेचित मुद्राओं का निरूपण करता है।

तृतीय अध्याय में नाट्यशास्त्र से उत्तरवर्ती ग्रन्थों में उपलब्ध नाट्य मुद्राओं की सूची मात्र दी गई है, क्योंकि परवर्ती ग्रन्थकारों ने प्राय: भरत के नाट्य शास्त्र का ही अनुसरण किया है।

चतुर्थ अध्याय अभिनयदर्पण में वर्णित विशिष्ट मुद्राओं से सन्दर्भित है।

पाँचवें अध्याय में भारतीय नाट्य कला में प्रचलित सामान्य मुद्राओं का विश्लेषण किया गया है।

छठवें अध्याय में शिल्पकला एवं मूर्तिकला में प्राप्त हस्त मुद्राओं को सचित्र बताया गया है।

सातवाँ अध्याय उपसंहार के रूप में गुम्फित है। जिसमें रोगोपचार उपयोगी नाट्य मुद्राओं का चार्ट दिया गया है।

• मुद्रा योग के **तृतीय खण्ड** में जैन मुद्राओं का गुम्फन किया गया है। इसमें जैन परम्परा की महत्त्वपूर्ण मुद्राओं का समीक्षात्मक अध्ययन करते हुए उसे पाँच अध्यायों में प्रस्तुत किया है।

प्रथम अध्याय में सामान्य तौर पर मुद्राओं के विभिन्न प्रभाव बतलाए गए हैं।

द्वितीय अध्याय में 14वीं शती के महान् आचार्य जिनप्रभसूरि रचित विधिमार्गप्रपा की लगभग 75 मुद्राओं का सोद्देश्य स्वरूप बतलाया गया है।

तृतीय अध्याय में 15वीं शती के दिग्गज आचार्य श्री वर्धमानसूरि द्वारा उल्लेखित मुद्राओं का रहस्यपूर्ण विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में प्राचीन-अर्वाचीन प्रतियों एवं ग्रन्थों में उपलब्ध शताधिक मुद्राओं का प्रभावी वर्णन किया गया है। पांचवाँ अध्याय उपसंहार के रूप में निरूपित है। इसमें मुख्य रूप से रोगोपचार उपयोगी जैन मुद्राओं की सारणी प्रस्तुत की गई है।

• मुद्रा योग का यह **चतुर्थ खण्ड** निम्न सात अध्यायों में वर्गीकृत है और इसमें हिन्दू परम्परागत मुद्राओं की उपयोगिता चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में बताई गई है।

प्रथम अध्याय में मुद्रा प्रयोग से सूक्ष्म शरीर के शक्ति स्थानों पर होने वाले प्रभावों की चर्चा की गई है।

द्वितीय अध्याय में हिन्दू परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का सटीक वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय में हिन्दू धर्म के प्राचीन ग्रन्थों में उल्लिखित मुद्राओं का सचित्र विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में गायत्री जाप साधना में उपयोगी मुद्राओं का प्रभावपूर्ण निरूपण किया गया है।

पंचम अध्याय में हिन्दू एवं बौद्ध दोनों परम्परा में समान रूप से मान्य मुद्राओं पर विचार किया गया है।

षष्ठम अध्याय में देवार्चन, नित्य उपासना, होम आदि के समय प्रयोग की जाने वाली मुद्राओं का प्रतिपादन है।

सप्तम अध्याय में रोगोपचार में सहयोगी हिन्दू मुद्राओं का चार्ट दिया गया है जिसे उपसंहार कहा जा सकता है।

• मुद्रा योग के **पाँचवें खण्ड** के अन्तर्गत बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक अनुशीलन किया गया है। यह पांचवाँ खण्ड एकादश अध्यायों में गूंथा गया है–

पहला अध्याय भौतिक एवं आध्यात्मिक जगत पर पड़ने वाले मुद्रा के विविध प्रभावों को उपदर्शित करता है।

दूसरे *अध्याय में भगवान बुद्ध की मुख्य पाँच एवं सामान्य चालीस*

मुद्राओं का सचित्र वर्णन किया गया है।

तीसरे अध्याय में सप्त रत्न, चौथे अध्याय में अष्ट मंगल, पाँचवें अध्याय में अठारह कर्त्तव्य, छठे अध्याय में बारह द्रव्य हाथ मिलन, सातवें अध्याय में म-म-मडोस ऐसे विविध प्रसंगों में उपयोगी मुद्राओं का सहेतुक चित्रण किया गया है।

आठवाँ अध्याय जापानी बौद्ध मुद्राओं एवं नौवाँ अध्याय भारतीय बौद्ध मुद्राओं का प्रतिपादन करता है।

दशवें अध्याय में गर्भधातु- वज्रधातु मण्डल संबंधी धार्मिक मुद्राओं का निरूपण किया गया है।

ग्यारहवाँ अध्याय उपसंहार के रूप में प्रस्तुत है। इस कृति के परिशिष्ट में भगवान बुद्ध के प्राचीन मुद्रा चित्र भी दिए गए हैं।

- मुद्रा विधि के **छठवें खण्ड** में यौगिक मुद्राओं की विवेचना की गई है। यह शोध खण्ड पाँच अध्यायों में गुम्फित है।

प्रथम अध्याय में चक्र एवं केन्द्र आदि के संतुलित-असंतुलित स्थिति से होने वाले परिणामों की चर्चा की गई है।

द्वितीय अध्याय में सामान्य अभ्यास द्वारा जिन मुद्राओं को सिद्ध किया जा सकता है उनका सोद्देश्य वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय में विशिष्ट प्रकार के अभ्यास द्वारा जिन मुद्राओं पर अधिकार पाया जा सकता है, ऐसी हठयोग सम्बन्धी मुद्राओं का विवेचन किया गया है।

यद्यपि जैन एवं इतर परम्पराओं में भी यौगिक मुद्राएँ हैं परन्तु वहाँ उनका अस्तित्व स्वतंत्र नहीं है। वे अन्य प्रासंगिक मुद्राओं के साथ सम्मिलित है। इस खण्ड में जिन यौगिक मुद्राओं का उल्लेख है वे मुख्यतया हठयोग सम्बन्धी और दुःसाध्य हैं।

चौथे अध्याय में चिकित्सा उपयोगी यौगिक मुद्राओं का चार्ट दिया गया है, जो शारीरिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियों से अनुसरणीय है।

पांचवाँ अध्याय परिशिष्ट के रूप में है जिसमें सर्वप्रथम सहायक ग्रन्थ सूची दी गई है। उसके पश्चात् मुद्रा प्रभावित चक्र आदि के यन्त्र एवं चित्र दिये गये हैं और विशिष्ट शब्दों का अर्थ विन्यास किया गया है।

• मुद्रा सम्बन्धी **सातवें खण्ड** में जन साधारण में प्रचलित मुद्राओं का सविधि वैज्ञानिक स्वरूप एवं उसके अप्रत्याशित लाभों की चर्चा तीन अध्यायों के आधार पर की गई है।

प्रथम अध्याय में मुद्राओं से प्रभावित सप्त चक्रादि के विशिष्ट प्रभाव एवं मुद्रा बनाने के नियम-उपनियम बतलाए गए हैं।

द्वितीय अध्याय में आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं का प्रासंगिक वर्णन किया गया है।

तृतीय अध्याय उपसंहारात्मक है जिसमें किस रोग में कौनसी मुद्रा लाभकारी है उसका जनोपयोगी चार्ट दिया गया है।

इस प्रकार मुद्रा विधि से सम्बन्धित सातों खण्ड अपने आप में अनूठे एवं अलभ्य सामग्री से परिपूर्ण है।

●

वन्दना की सरगम

आज से सत्रह वर्ष पूर्व एक छोटे से लक्ष्य को लेकर लघु यात्रा प्रारंभ हुई थी। उस समय यह अनुमान कदापि नहीं था कि वह यात्रा विविध मोड़ों से गुजरते हुए इतना विशाल स्वरूप धारण कर लेगी। आज इस दुरुह मार्ग के अन्तिम पड़ाव पर पहुँचने में मेरे लिए परम आधारभूत बने जगत के सार्थवाह, तीन लोक के सिरताज, अखिल विश्व में जिन धर्म की ज्योत को प्रदीप्त करने वाले, मार्ग दिवाकर, अरिहंत परमात्मा के पाद प्रसूनों में अनेकशः श्रद्धा दीप प्रज्वलित करती हूँ। उन्हीं की श्रेयस्कारी वाणी इस सम्यक ज्ञान की आराधना में मुख्य आलंबन बनी है।

रत्नत्रयी एवं तत्त्वत्रयी के धारक, समस्त विघ्नों के निवारक, सकारात्मक ऊर्जा के संवाहक, सिद्धचक्र महायंत्र को अन्तर्हृदय से वंदना करती हूँ। इस श्रुतयात्रा के क्रम में परम हेतुभूत, भाव विशुद्धि के अधिष्ठाता, अनंत लब्धि निधान गौतम स्वामी के चरणों में भी हृदयावनत हो वंदना करती हूँ।

धर्म-स्थापना करके जग को, सत्य का मार्ग बताया है।
दिवाकर बनकर अखिल विश्व में, ज्ञान प्रकाश फैलाया है।
सर्वज्ञ अरिहंत प्रभु ने, पतवार बन पार लगाया है।
सिद्धचक्र और गुरु गौतम ने, विषमता में साहस बढ़ाया है।।

जिनशासन के समुद्धारक, कलिकाल में महान प्रभावक, जन मानस में धर्म संस्कारों के उन्नायक, चारों दादा गुरुदेव के चरणों में सश्रद्धा समर्पित हूँ। इन्हीं की कृपा से मैं रत्नत्रयात्मक साधना पथ पर अग्रसर हो पाई हूँ। इसी श्रृंखला में मैं आस्था प्रणत हूँ उन सभी आचार्य एवं मुनि भगवंतों की, जिनका आगम आलोडन एवं शस्त्र गुंफन इस कार्य के संपादन में अनन्य सहायक बना।

दत्त-मणिधर-कुशल-चन्द्र गुरु, जैन गगनांगण के ध्रुव सितारे हैं।
लक्षाधिक को जैन बनाकर, लहरायी धर्म ध्वजा हर द्वारे हैं।
श्रुत आलोडक सूरिजन मुनिजन, आगम रहस्यों को प्रकटाते हैं।
अध्यात्म योगियों के शुभ परमाणु, हर बिगड़े काज संवारे हैं।।

जिनके मन, वचन और कर्म में सत्य का तेज आप्लावित है। जिनके आचार, विचार और व्यवहार में जिनवाणी का सार समाहित है ऐसे शासन के सरताज, खरतरगच्छाचार्य श्री मज्जिन कैलाशसागरसूरीश्वरजी म.सा. के चरणारविन्द में भाव प्रणत वंदना। उन्हीं की अन्तर प्रेरणा से यह कार्य ऊँचाईयों पर पहुँच पाया है।

श्रद्धा समर्पण के इन क्षणों में प्रतिपल स्मरणीय, पुण्य प्रभावी, ज्योतिर्विद, प्रौढ़ अनुभवी , इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठों पर शासन प्रभावना की यशोगाथाएँ अंकित कर रहे पूज्य उपाध्याय भगवन्त श्री मणिप्रभसागरजी म.सा. के पाद पद्मों में श्रद्धायुक्त नमन करती हूँ। आपश्री द्वारा प्रदत्त प्रेरणा एवं अनुभवी ज्ञान इस यात्रा की पूर्णता में अनन्य सहायक रहा है।

इसी श्रृंखला में असीम उपकारों का स्मरण करते हुए श्रद्धानत हूँ अनुभव के श्वेत नवनीत, उच्च संकल्पनाओं के स्वामी, राष्ट्रसंत पूज्य पद्मसागरसूरीश्वर जी म.सा. के पादारविन्द में। आपश्री द्वारा प्रदत्त सहज मार्गदर्शन एवं कोबा लाइब्रेरी से पुस्तकों का भरपूर सहयोग प्राप्त हुआ। आपश्री के निश्रारत सहजमना पूज्य गणिवर्य प्रशांतसागरजी म.सा. एवं सरस्वती उपासक, भ्राता मुनि श्री विमलसागरजी म.सा. ने भी इस ज्ञान यात्रा में हर तरह का सहयोग देते हुए कार्य को गति प्रदान की।

मैं हृदयावनत हूँ प्रभुत्वशील एवं स्नेहशील व्यक्तित्व के नायक, छत्तीस गुणों के धारक, युग प्रभावक पूज्य कीर्तियशसूरीश्वरजी म.सा. के चरण कमलों में, जिनकी असीम कृपा से इस शोध कार्य में नवीन दिशा प्राप्त हुई। आप श्री के विद्वद् शिष्य पूज्य रत्नयश विजयजी म.सा. द्वारा प्राप्त दिशानिर्देश कार्य पूर्णता में विशिष्ट आलम्बनभूत रहे।

कृतज्ञता ज्ञापन की इस कड़ी में विनयावनत हूँ शासन प्रभावक पूज्य राजयश सूरीश्वरजी म.सा. एवं मृदु व्यवहारी पूज्य वाचंयमा श्रीजी म.सा. (बहन महाराज) के चरणों में, जिन्होंने अहमदाबाद प्रवास के दौरान हृदयगत शंकाओं का सम्यक समाधान किया।

मैं भावप्रणत हूँ संयम अनुपालक, जग वल्लभ, नव्य अन्वेषक पूज्य आचार्य श्री गुणरत्नसागर सूरीश्वरजी म.सा. के चरणों में, जिन्होंने अप्रत्यक्ष रूप से जिज्ञासाओं को उपशांत किया एवं अचलगच्छ परम्परा सम्बन्धी सूक्ष्म विधानों के रहस्यों से अवगत करवाया।

मैं आस्था प्रणत हूँ लाडनूं विश्व भारती के स्वर्ण पुरुष, श्रुत सागर के गूढ़ अन्वेषक, कुशल अनुशास्ता, आचार्य श्री महाप्रज्ञजी एवं आचार्य श्री महाश्रमण जी के पद पंकजों में, आप श्री की सृजनात्मक संरचनाओं के माध्यम से यह कार्य अथ से इति तक पहुँच पाया है।

इसी क्रम में मैं नतमस्तक हूँ शासन उन्नायक, संघ प्रभावक, त्रिस्तुतिक गच्छाधिपति पूज्य आचार्यप्रवर श्री जयंतसेन सूरीश्वरजी म.सा. के चरण पुंज में, जिन्होंने यथायोग्य सहायता देकर कार्य पूर्णाहुति में सहयोग दिया।

मैं श्रद्धाप्रणत हूँ शासक प्रभावक, क्रान्तिकारी संत श्री तरुणसागरजी म.सा. के चरण सरोज में, जिन्होंने अपने व्यस्त कार्यक्रमों में भी मुझे अपना अमूल्य समय देकर यथायोग्य समाधान दिए।

मैं अंत:करण पूर्वक आभारी हूँ शासन प्रभावक, मधुर गायक प.पू. पीयूषसागरजी म.सा. एवं प्रखर वक्ता प.पू. सम्यकरत्न सागरजी म.सा. के प्रति, जिन्होंने हर समय समुचित समस्याओं का समाधान देने में रुचि एवं तत्परता दिखाई। सच कहूं तो

जिनके सफल अनुशासन में, वृद्धिंगत होता जिनशासन।
माली बनकर जो करते हैं, संघ शासन का अनुपालन॥
कैलास गिरी सम जो करते रक्षा, भौतिकता के आंधी तूफानों से।
अमृत पीयूष बरसाते हरदम, मणि अपने शांत विचारों से॥
कर संशोधन किया कार्य प्रमाणित, दिया सद्ग्रन्थों का ज्ञान।
कीर्तियश है रत्न सम जग में, पद्म कृपा से किया ज्ञानामृत पान॥
सकल विश्व में गूंज रहा है, राजयश जयंतसेन का नाम।
गुणरत्न की तरुण स्फूर्ति से, महाप्रज्ञ बने श्रमण वीर समान॥

इस श्रुत गंगा में चेतन मन को सदा आप्लावित करते रहने की परोक्ष प्रेरणा देने वाली, जीवन निर्मात्री, अध्यात्म गंगोत्री, आशु कवयित्री, चौथे कालखण्ड में जन्म लेने वाली भव्य आत्माओं के समान प्राज्ञ एवं ऋजुस्वभावधारिणी, प्रवर्त्तिनी महोदया, गुरुवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. के पाद-प्रसूनों में अनन्तानन्त वंदन करती हूँ, क्योंकि यह जो कुछ भी लिखा गया है वह सब उन्हीं के कृपाशीष की फलश्रुति है अत: उनके पवित्र चरणों में पुनश्च श्रद्धा के पुष्प अर्पित करती हूँ।

उपकार स्मरण की इस कड़ी में मैं आस्था प्रणत हूँ वात्सल्य वारिधि,

महतरा पद विभूषिता पूज्या विनिता श्रीजी म.सा., पूज्या प्रवर्त्तिनी चन्द्रप्रभा श्रीजी म.सा., स्नेह पुंज पूज्य कीर्तिप्रभा श्रीजी म.सा., ज्ञान प्रौढ़ा पूज्य दिव्यप्रभा श्रीजी म.सा., सरलमना पूज्य चन्द्रकलाश्रीजी म.सा., मरुधर ज्योति पूज्य मणिप्रभा श्रीजी म.सा., स्नेह गंगोत्री पूज्य मनोहर श्रीजी म.सा., मंजुल स्वभावी पूज्य सुलोचना श्रीजी म.सा., विद्या वारिधि पूज्य विद्युतप्रभा श्रीजी म.सा. आदि सभी पूज्यवर्य्याओं के चरणों में, जिनकी मंगल कामनाओं ने मेरे मार्ग को निष्कंटक बनाने एवं लक्ष्य प्राप्ति में सेतु का कार्य किया।

गुरु उपकारों को स्मृत करने की इस वेला में अथाह श्रद्धा के साथ कृतज्ञ हूँ त्याग-तप-संयम की साकार मूर्ति, श्रेष्ठ मनोबली, पूज्या सज्जनमणि श्री शशिप्रभा श्रीजी म.सा. के प्रति, जिनकी अन्तर प्रेरणा ने ही मुझे इस महत् कार्य के लिए कटिबद्ध किया और विषम बाधाओं में भी साहस जुटाने का आत्मबल प्रदान किया। चन्द शब्दों में कहूँ तो

आगम ज्योति गुरुवर्य्या ने, ज्ञान पिपासा का दिया वरदान।
अनायास कृपा वृष्टि ने जगाया, साहस और अंतर में लक्ष्य का भान।।
शशि चरणों में रहकर पाया, आगम-ग्रन्थों का सुदृढ़ ज्ञान।
स्नेह आशीष पूज्यवर्य्याओं का, सफलता पाने में बना सौपान।।

कृतज्ञता ज्ञापन के इस अवसर पर मैं अपनी समस्त गुरु बहिनों का भी स्मरण करना चाहती हूँ, जिन्होंने मेरे लिए सदभावनाएँ ही संप्रेषित नहीं की, अपितु मेरे कार्य में यथायोग्य सहयोग भी दिया।

मेरी निकटतम सहयोगिनी ज्येष्ठ गुरुबहिना पू. प्रियदर्शना श्रीजी म.सा., संयमनिष्ठा पू. जयप्रभा श्रीजी म.सा., सेवामूर्ति पू. दिव्यदर्शना श्रीजी म.सा. जाप परायणी पू. तत्वदर्शना श्रीजी म.सा., प्रवचनपटु पू. सम्यकदर्शना श्रीजी म.सा., सरलहृदयी पू. शुभदर्शना श्रीजी म.सा., प्रसन्नमना पू. मुदितप्रज्ञा श्रीजी म.सा., व्यवहार निपुणा शीलगुणा जी, मधुरभाषी कनकप्रभा श्रीजी, हंसमुख स्वभावी संयमप्रज्ञा श्रीजी, संवेदनहृदयी श्रुतदर्शना जी आदि सर्व के अवदान को भी विस्मृत नहीं कर सकती हूँ।

साध्वीद्वया सरलमना **स्थितप्रज्ञाजी** एवं मौन साधिका **संवेगप्रज्ञाजी** के प्रति विशेष आभार अभिव्यक्त करती हूँ क्योंकि इन्होंने प्रस्तुत शोध कार्य के दौरान व्यावहारिक औपचारिकताओं से मुक्त रखने, प्रूफ संशोधन करने एवं हर तरह की सेवाएँ प्रदान करने में अद्वितीय भूमिका अदा की। साथ ही गुर्वाज्ञा

को शिरोधार्य कर ज्ञानोपासना के पलों में निरन्तर मेरी सहचरी बनी रही।

इसी के साथ अल्प भाषिणी सुश्री मोनिका बैराठी (जयपुर) एवं शान्त स्वभावी सुश्री सीमा छाजेड़ (मालेगाँव) को साधुवाद देती हुई उनके उज्ज्वल भविष्य की तहेदिल से कामना करती हूँ क्योंकि शोध कार्य के दौरान दोनों मुमुक्षु बहिनों ने हर तरह की सेवाएँ प्रदान की।

अन्तर्विश्वास भगिनी मंडल का, देती दुआएँ सदा मुझको।
प्रिय का निर्देशन और सम्यक बुद्धि, मुदित करे अन्तर मन को।
स्थित संवेग की श्रुत सेवाएँ, याद रहेगी नित मुझको।
इस कार्य में नाम है मेरा, श्रेय जाता सज्जन मण्डल को।।

इस शोध प्रबन्ध के प्रणयन काल में जिनका मार्गदर्शन अहम् स्थान रखता है ऐसे जैन विद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन के निष्णात विद्वान, प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर के संस्थापक, पितृ वात्सल्य से समन्वित, आदरणीय डॉ. सागरमलजी जैन के प्रति अन्तर्भावों से हार्दिक कृतज्ञता अभिव्यक्त करती हूँ। आप श्री मेरे सही अर्थों में ज्ञान गुरु हैं। यही कारण है कि आपकी निष्काम करुणा मेरे शोध पथ को आद्यंत आलोकित करती रही है। आपकी असीम प्रेरणा, नि:स्वार्थ सौजन्य, सफल मार्गदर्शन और सुयोग्य निर्माण की गहरी चेष्टा को देखकर हर कोई भावविह्वल हो उठता है। आपके बारे में अधिक कुछ कह पाना सूर्य को दीपक दिखाने जैसा है।

दिवाकर सम ज्ञान प्रकाश से, जागृत करते संघ समाज
सागर सम श्रुत रत्नों के दाता, दिया मुझे भी लक्ष्य विराट।
मार्गदर्शक बनकर मुझ पथ का, सदा बढ़ाया कार्योल्लास।।

इस दीर्घ शोधावधि में संघीय कर्त्तव्यों का निर्वहन करते हुए अनेक स्थानों पर अध्ययनार्थ प्रवास हुआ। इन दिनों में हर प्रकार की छोटी-बड़ी सेवाएँ देकर सर्व प्रकारेण चिन्ता मुक्त रखने के लिए शासन समर्पित सुनीलजी मंजुजी बोथरा (रायपुर) के भक्ति भाव की अनुशंसा करती हूँ।

अपने सद्भावों की ऊर्जा से जिन्होंने मुझे सदा स्फुर्तिमान रखा एवं दूरस्थ रहकर यथोचित सेवाएँ प्रदान की ऐसी स्वाध्याय निष्ठा, श्रीमती प्रीतिजी अजितजी पारख (जगदलपुर) भी साधुवाद के पात्र हैं।

सेवा स्मृति की इस कड़ी में परमात्म भक्ति रसिक, सेवाभावी श्रीमती शकुंतलाजी चन्द्रकुमारजी (लाला बाबू) मुणोत (कोलकाता) की अनन्य सेवा

भक्ति एवं आत्मीय स्नेहभाव की स्मृति सदा मानस पटल पर बनी रहेगी।

इसी कड़ी में श्रीमति किरणजी खेमचंदजी बांठिया (कोलकाता) तथा श्रीमती नीलमजी जिनेन्द्रजी बैद (टाटा नगर) की निस्वार्थ सेवा भावना एवं मुद्राओं के चित्र निर्माण में उनके अथक प्रयासों के लिए मैं उनकी सदा ऋणी रहूँगी।

बनारस अध्ययन के दौरान वहाँ के भेलुपुर श्री संघ, रामघाट श्री संघ तथा निर्मलचन्दजी गांधी,कीर्तिभाई ध्रुव, अश्विन भाई शाह, ललितजी भंसाली, धर्मेन्द्रजी गांधी, दिव्येशजी शाह आदि परिवारों ने अमूल्य सेवाएँ दी, एतदर्थ उन सभी को सहृदय साधुवाद है।

इसी प्रवास के दरम्यान कलकत्ता, जयपुर, मुम्बई, जगदलपुर, मद्रास, बेंगलोर, मालेगाँव, टाटानगर, वाराणसी आदि के संघों एवं तत् स्थानवर्ती कान्तिलालजी मुकीम, मणिलालजी दुसाज, विमलचन्दजी महमवाल, महेन्द्रजी नाहटा, अजयजी बोथरा, पन्नालाल दुगड़, नवरतनमलजी श्रीमाल, मयूर भाई शाह, जीतेशमलजी, नवीनजी झाड़चूर, अश्विनभाई शाह, संजयजी मालू, धर्मचन्दजी बैद आदि ने मुझे अन्तप्रेरित करते हुए अपनी सेवाएँ देकर इस कार्य की सफलता का श्रेय प्राप्त किया है। अतएव सभी गुरु भक्तों की अनुमोदना करती हुई उनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

इस श्रेष्ठतम शोध कार्य को पूर्णता देने और उसे प्रामाणिक सिद्ध करने में L.D. Institute अहमदाबाद श्री कैलाशसागरसूरि ज्ञानमंदिर-कोबा, प्राच्य विद्यापीठ-शाजापुर, खरतरगच्छ संघ लायब्रेरी-जयपुर, पार्श्वनाथ विद्यापीठ-वाराणसी के पुस्तकालयों का अनन्य सहयोग प्राप्त हुआ, एतदर्थ कोबा संस्थान के केतन भाई, मनोज भाई, अरूणजी आदि एवं पार्श्वनाथ विद्यापीठ के ओमप्रकाश सिंह को बहुत-बहुत धन्यवाद और शुभ भावनाएँ प्रेषित करती हूँ।

प्रस्तुत शोध कार्य को जनग्राह्य बनाने में जिनकी पुण्य लक्ष्मी सहयोगी बनी है उन सभी श्रुत संवर्धक लाभार्थियों का मैं अनन्य हृदय से आभार अभिव्यक्त करती हूँ।

इस बृहद शोध खण्ड को कम्प्यूटराईज्ड करने एवं उसे जन उपयोगी बनाने हेतु मैं अंतर हृदय से आभारी हूँ मितभाषी श्री विमलचन्द्रजी मिश्रा (वाराणसी) की, जिन्होंने इस कार्य को अपना समझकर कुशलता पूर्वक संशोधन किया। उनकी कार्य निष्ठा का ही परिणाम है कि यह कार्य आज साफल्य के शिखर पर पहुँच पाया है।

इसी क्रम में ज्ञान रसिक, मृदुस्वभावी श्रीरंजनजी कोठारी, सुपुत्र रोहितजी कोठारी एवं पुत्रवधु ज्योतिजी कोठारी का भी मैं आभार व्यक्त करती हूँ कि उन्होंने जिम्मेदारी पूर्वक सम्पूर्ण साहित्य के प्रकाशन एवं कंवर डिजाईनिंग में सजगता दिखाई तथा उसे लोक रंजनीय बनाने का प्रयास किया। शोध प्रबन्ध की समस्त कॉपियों के निर्माण में अपनी पुण्य लक्ष्मी का सदुपयोग कर श्रुत उन्नयन में निमित्तभूत बने हैं।

Last but not the least के रूप में उस स्थान का उल्लेख भी अवश्य करना चाहूँगी जो मेरे इस शोध यात्रा के प्रारंभ एवं समापन की प्रत्यक्ष स्थली बनी। सन् 1996 के कोलकाता चातुर्मास में जिस अध्ययन की नींव डाली गई उसकी बहुमंजिल इमारत सत्रह वर्ष बाद उसी नगर में आकर पूर्ण हुई। इस पूर्णाहुति का मुख्य श्रेय जाता है श्री जिनरंगसूरि पौशाल के ट्रस्टी श्री विमलचंदजी महमवाल, कान्तिलालजी मुकीम, कमलचंदजी धांधिया, मणिलालजी दुसाज आदि को जिन्होंने अध्ययन के लिए यथायोग्य स्थान एवं सुविधाएँ प्रदान की तथा संघ समाज के कार्यभार से मुक्त रखने का भी प्रयास किया।

इस शोध कार्य के अन्तर्गत जाने-अनजाने में किसी भी प्रकार की त्रुटि रह गई हो अथवा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में सहयोगी बने हुए लोगों के प्रति कृतज्ञ भाव अभिव्यक्त न किया हो तो सहृदय मिच्छामि दुक्कडम् की प्रार्थी हूँ।

प्रतिबिम्ब इन्दू का देख जल में, आनंद पाता है बाल ज्यों।
आप्त वाणी मनन कर, आज प्रसन्नचित्त मैं हूँ।
सत्गुरु जनों के मार्ग का, यदि सत्प्ररूपण ना किया।
क्षमत्व हूँ मैं सुज्ञ जनों से, हो क्षमा मुझ गल्तियाँ।।

●

मिच्छामि दुक्कडं

आगम मर्मज्ञा, आशु कवयित्री, जैन जगत की अनुपम साधिका, प्रवर्त्तिनी पद सुशोभिता, खरतरगच्छ दीपिका पू. गुरूवर्य्या श्री सज्जन श्रीजी म.सा. की अन्तरंग कृपा से आज छोटे से लक्ष्य को पूर्ण कर पाई हूँ।

यहाँ शोध कार्य के प्रणयन के दौरान उपस्थित हुए कुछ संशय युक्त तथ्यों का समाधान करना चाहूँगी–

सर्वप्रथम तो मुनि जीवन की औत्सर्गिक मर्यादाओं के कारण जानते-अजानते कई विषय अनछुए रह गए हैं। उपलब्ध सामग्री के अनुसार ही विषय का स्पष्टीकरण हो पाया है अतः कहीं-कहीं सन्दर्भित विषय में अपूर्णता भी प्रतीत हो सकती है।

दूसरा जैन संप्रदाय में साध्वी वर्ग के लिए कुछ नियत मर्यादाएँ हैं जैसे प्रतिष्ठा, अंजनशलाका, उपस्थापना, पदस्थापना आदि करवाने एवं आगम शास्त्रों को पढ़ाने का अधिकार साध्वी समुदाय को नहीं है। योगोद्वहन, उपधान आदि क्रियाओं का अधिकार मात्र पदस्थापना योग्य मुनि भगवंतों को ही है। इन परिस्थितियों में प्रश्न उपस्थित हो सकता है कि क्या एक साध्वी अनधिकृत एवं अननुभूत विषयों पर अपना चिन्तन प्रस्तुत कर सकती है?

इसके जवाब में यही कहा जा सकता है कि 'जैन विधि-विधानों का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन' यह शोध का विषय होने से यत्किंचित लिखना आवश्यक था अतः गुरु आज्ञा पूर्वक विद्वद्वर आचार्य भगवंतों से दिशा निर्देश एवं सम्यक जानकारी प्राप्तकर प्रामाणिक उल्लेख करने का प्रयास किया है।

तीसरा प्रायश्चित्त देने का अधिकार यद्यपि गीतार्थ मुनि भगवंतों को है किन्तु प्रायश्चित्त विधि अधिकार में जीत (प्रचलित) व्यवहार के अनुसार प्रायश्चित्त योग्य तप का वर्णन किया है। इसका उद्देश्य मात्र यही है कि भव्य जीव पाप भीरु बनें एवं दोषकारी क्रियाओं से परिचित होवें। कोई भी आत्मार्थी इसे देखकर स्वयं प्रायश्चित्त ग्रहण न करें।

इस शोध के अन्तर्गत कई विषय ऐसे हैं जिनके लिए क्षेत्र की दूरी के कारण यथोचित जानकारी एवं समाधान प्राप्त नहीं हो पाए, अतः तद्विषयक पूर्ण स्पष्टीकरण नहीं कर पाई हूँ।

कुछ लोगों के मन में यह शंका भी उत्पन्न हो सकती है कि मुद्रा विधि के अधिकार में हिन्दू, बौद्ध, नाट्य आदि मुद्राओं पर इतना गूढ़ अध्ययन क्यों?

मुद्रा एक यौगिक प्रयोग है। इसका सामान्य हेतु जो भी हो परंतु इसकी अनुश्रुति आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता के रूप में ही होती है।

प्रायः मुद्राएँ मानव के दैनिक चर्या से सम्बन्धित है। इतर परम्पराओं का जैन परम्परा के साथ पारस्परिक साम्य-वैषम्य भी रहा है अतः इनके सद्पक्षों को उजागर करने हेतु अन्य मुद्राओं पर भी गूढ़ अन्वेषण किया है।

यहाँ यह भी कहना चाहूँगी कि शोध विषय की विराटता, समय की प्रतिबद्धता, समुचित साधनों की अल्पता, साधु जीवन की मर्यादा, अनुभव की न्यूनता, व्यावहारिक एवं सामान्य ज्ञान की कमी के कारण सभी विषयों का यथायोग्य विश्लेषण नहीं भी हो पाया है। हाँ, विधि-विधानों के अब तक अस्पृष्ट पन्नों को खोलने का प्रयत्न अवश्य किया है। प्रज्ञा सम्पन्न मुनि वर्ग इसके अनेक रहस्य पटलों को उद्घाटित कर सकेंगे। यह एक प्रारंभ मात्र है।

अन्ततः जिनवाणी का विस्तार करते हुए एवं शोध विषय का अन्वेषण करते हुए अल्पमति के कारण शास्त्र विरुद्ध प्ररूपणा की हो, आचार्यों के गूढ़ार्थ को यथारूप न समझा हो, अपने मत को रखते हुए जाने-अनजाने अर्हतवाणी का कटाक्ष किया हो, जिनवाणी का अपलाप किया हो, भाषा रूप में उसे सम्यक अभिव्यक्ति न दी हो, अन्य किसी के मत को लिखते हुए उसका संदर्भ न दिया हो अथवा अन्य कुछ भी जिनाज्ञा विरुद्ध किया हो या लिखा हो तो उसके लिए त्रिकरण-त्रियोगपूर्वक श्रुत रूप जिन धर्म से मिच्छामि दुक्कड़म् करती हूँ।

●

विषयानुक्रमणिका

अध्याय-1 : मुद्रा का स्वरूप एवं उसकी अवधारणाएँ 1-8

अध्याय-2 : मुद्रा योग के प्रकार एवं वैज्ञानिक परिशीलन 9-36

1. मुद्राओं के प्रकार
2. विविध ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में मुद्रा योग का वैशिष्ट्य
3. मुद्रा योग की आवश्यकता एवं उपादेयता
4. ध्यान और मुद्रा 5. आसन और मुद्रा
6. हठयोग और मुद्रा 7. वर्गणा और मुद्रा
8. देवी-देवता और मुद्रा 9. मुद्रा योग के लाभ
10. मुद्रा योग का रहस्य 11. हस्त मुद्रा का रहस्य विज्ञान

अध्याय-3: मुद्रा योग का ऐतिहासिक अनुसन्धान 37-44

अध्याय-4: जैन एवं इतर परम्परा में उपलब्ध मुद्राओं की सूची एवं तुलनात्मक अध्ययन 45-81

1. नाट्य परम्परागत मुद्राओं की सूची एवं तुलना।
2. जैन ग्रन्थों में वर्णित मुद्राओं की सूची एवं तुलना।
3. हिन्दू ग्रन्थों में प्रतिपादित मुद्राओं की सूची एवं तुलना।
4. बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं की सूची एवं तुलना।
5. योग साधना में मुख्य उपयोगी मुद्राओं की सूची।
6. आधुनिक चिकित्सा में प्रचलित मुद्राओं की सूची।

अध्याय-5 : उपसंहार 82-89

सहायक ग्रन्थ सूची 90-94

अध्याय-1

मुद्रा का स्वरूप एवं उसकी अवधारणाएँ

इस विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में धर्म-कर्म, साधना-उपासना, ऋषि-मुनियों आदि आध्यात्मिक तत्त्वों का विशिष्ट महत्त्व रहा है। भारतीय संस्कृति इसकी मूल संवाहक मानी जाती है। यहाँ पूर्वकाल से ही आध्यात्मिक तत्त्व फलते-फूलते रहे हैं। यही कारण है कि भारत देश को धर्म प्रधान देश कहा जाता है। इस महिमा मण्डित परम्परा के निर्वहन में सन्त साधकों ने ही मुख्य भूमिकाएँ निभायी है। भारतीय ऋषि-महर्षियों की कठोरतम साधना का ही परिणाम है कि आज यह देश आचार और विचार, तप और त्याग, अहिंसा और संयम जैसे मौलिक तत्त्वों से पूजा जाता है तथा आदर्श एवं प्रेरणा का स्रोत माना जाता है।

पूर्वज साधकों ने समूचे मानव जाति के नि:श्रेयार्थ नयी-नयी विद्याओं की खोज की तथा अनन्त शक्ति पुंज आत्म संपदाओं को उद्घाटित करते हुए उन विद्याओं को आत्मसात किया। प्राचीन आगम इस घटना के प्रत्यक्ष साक्षी हैं। किन्तु आज बहुत-से ग्रन्थ लुप्त प्राय: हो चुके हैं। जैन परम्परा का बारहवाँ दृष्टिवाद नामक अंगसूत्र इष्ट सिद्धियों एवं अलौकिक विद्याओं का अक्षय भण्डार था, जो व्युच्छिन्न हो चुका है। अब नाम मात्र की विद्याएँ ही शेष रह गयी है। इन्हीं विद्याओं में एक महत्वपूर्ण विद्या है– मुद्रा साधना।

मुद्रा का अर्थ विश्लेषण एवं परिभाषाएँ

संस्कृत का मुद्रा शब्द मुद् मोदने धातु से निष्पन्न है। शब्द कोष के अनुसार मुद् धातु अनेक अर्थों में प्रयुक्त होती है जैसे– प्रसन्नता, आनन्द, उल्लास, खुशी, हर्ष आदि। किन्तु यहाँ मोदन शब्द आमोद-प्रमोद के अर्थ में व्यवहृत है।[1]

शाब्दिक अर्थ की दृष्टि से जो आंतरिक प्रसन्नता प्रदान करती है, आत्मिक आनन्द की अनुभूति करवाती है वह मुद्रा है।

संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से मुद्रा की विभिन्न परिभाषाएँ परिलक्षित होती है–

एक परिभाषा के अनुसार **'मुद् मोद प्रमोदं आमोदं दाति ददातीति मुद्रा'** अर्थात जो अन्तर्आनन्द और अन्तः उल्लास को देती है, दिलवाती है वह मुद्रा है।

इसी प्रकार **'मोदयति आमोदयति प्रमोदयति मनोविकारान् दूरीकृत्य आरोग्यं संवर्द्धयति इति वा मुद्रा'** अर्थात जो प्रसन्नता देती है, हर्ष का वातावरण उपस्थित करती है, प्रमोद प्रसरित करती है अथवा मनोविकारों को दूर करके आरोग्य का संवर्द्धन करती है वह मुद्रा है।

एक अन्य परिभाषा के अनुसार **'आत्मगुणानां मोदं प्रमोदं आमोदं दाति ददातीति मुद्रा'** अर्थात आत्मिक गुणों को अनावृत्त करने के लिए जो प्रवृत्तियाँ चैतसिक प्रसन्नता और अपूर्व आह्लाद देती हैं वह मुद्रा है।

निर्वाणकलिका के निर्देशानुसार

मुदं करोति देवानां, द्रावयत्यश्रुय सुरांस्तथा।
मोहनाद् द्रावणाच्चैव, मुद्रेति परिकीर्तिता।।

अर्थात जो सम्यक्दृष्टि देवों को प्रसन्न करती है और असुर (विकृत विचार से युक्त) देवों एवं उनके दुष्प्रभावों का हरण करती है वह मुद्रा है।[2]

शब्दकल्पद्रुम में मुद्रा शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार है–

'मोदते अनयेति मुद्रा इति रूक् अतः टाप्'।[3]

अभिधान चिन्तामणि शब्दकोश में कहा गया है– **'मुद् हर्षे मुद्रा चिह्नकरणम्'।**[4]

वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी में मुद्रा के सम्बन्ध में **'मुद्रा प्रत्ययकारिणी'** ऐसी व्याख्या की गई है।[5]

ऋग्वेद (1/179/4) में इस शब्द का प्रयोग व्यक्तिवाचक संज्ञा के रूप में हुआ है। अगस्त्य की पत्नी का नाम लोपामुद्रा है। इस तरह वेदकाल के प्रारम्भ से ही मुद् धातु का प्रयोग प्राप्त होता है। मुद्रा योगसाधना का एक ऐसा उत्तम साधन है जिससे शरीर, चेतना और मन सब कुछ परिष्कृत हो जाते हैं।

वैदिक मान्यतानुसार जब ब्राह्मण संध्या उपासना करता है तब उसकी फल प्राप्ति के लिए की जाने वाली विशेष क्रिया को मुद्रा कहते हैं।

सिद्ध सिद्धान्तपद्धति के अभिप्रायानुसार प्रसन्नचित्त जीवात्मा द्वारा स्वयं का परमात्मा से संयोग करवा देना अर्थात जिसके द्वारा कर्मबद्ध संसारी आत्मा को अपने विशुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होती है, आत्मसत्ता में विद्यमान परमात्म तत्त्व का साक्षात्कार होता है, कर्मसंयोगी चेतना कर्म रहित अवस्था को उपलब्ध करती है वह यथार्थ मुद्रा कही गई है।[6]

प्रस्तुत ग्रन्थ में स्पष्टीकरण करते हुए यह भी कहा गया है कि जब गुरू के द्वारा परमात्म तत्त्व का यथार्थ साक्षात्कार होता है तब वह साधक, आत्मा और परमात्मा के एकत्व की अनुभूति करता हुआ स्वयं मुद्रा रूप में परिवर्तित हो जाता है।

तान्त्रिक उपासना में मुद्राओं के प्रयोग का विशेष महत्त्व बताया गया है। मुद्रा निघण्टु में कहा गया है कि यह मुद्रा सभी तन्त्रों में गोपनीय है तथा इसका प्रदर्शन करने से मन्त्रदेवता प्रसन्न होते हैं। जैसा कि **मूलपाठ है–**

अथ मुद्रा प्रवक्ष्यामि, सर्वतन्त्रेषु गोपिताः ।
याभिर्विरचिताभिश्च, मोदन्ते मन्त्रदेवताः ।।[7]

मुद्रा को यौगिक शब्द मानकर उसका पदच्छेद दो प्रकार से किया जाता है-

मुद् + रा और मुद् + द्रा

"मुदं रातीति मुद्रा" इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो मोद को अर्पण कर दे वह मुद्रा है। दूसरे पदच्छेद के अनुसार इसका प्रदर्शन करने से देवता मोददायक और पापों के द्रावक होते हैं।

श्रीमदभिनवगुप्ताचार्य ने प्रथम पदच्छेद के अनुसार मुद्रा अर्थ को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है-

मुदं स्वरूपलाभाख्यं, देहद्वारेण चात्मनाम् ।
रात्यर्पयति यत्तेन, मुद्रा शास्त्रेषु वर्णिता ।।[8]

इस देह के द्वारा आत्मस्वरूप को प्राप्त होना मोद है। यह जिस क्रिया के द्वारा मिलता है, अर्पित किया जाता है, दिया जाता है शास्त्रों में उसे ही मुद्रा कहा गया है।

वह लक्षण केवल उन यौगिक साधनाओं की मुद्राओं, बन्ध और वेध पर घटित होता है जिनके द्वारा मन की चंचलता पर नियंत्रण किया जा सकता हो, प्राण का नियमन किया जाता हो, स्थूल शरीर में इन्द्रियों की बाह्य गति का

निरोध सम्भव होता हो, पराङ्मुख को अन्तर्मुख किया जाता हो, स्थूल शरीर का उसके सूक्ष्म शरीर, कारण शरीर और पर-शरीर से तादात्म्य स्थापित होता हो, बिन्दु का सिन्धु में विलय होता हो और उन्मनी अवस्था की प्राप्ति होती हो। इस सम्बन्ध में श्रुति का कथन है-

भिद्यते हृदय ग्रन्थिः, छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि, तस्मिन्दृष्टेपरावरे ।।

यही जीव की मुक्तावस्था है, यही द्रावण क्रिया है, यही एकरस होना है, यही शक्ति का उन्मेष है। संक्षेप में योग की जिन क्रियाओं के द्वारा व्यक्ति स्वयं परमात्म रूप होता है वह अन्तः मुद्रा है।

दूसरी व्युत्पत्ति के अनुसार–

मुद्रा हि परतत्त्व प्रतिबिम्ब भूता अन्तःसंविद्द्रविणमुद्रणात्
मुदं राती पाशमोचनभेद द्रावण कारिणी, तत्संनिवेशरूपतया
परस्फार मनुकुर्वती ।[9]

शारदातिलक के अनुसार **'मुदं राति इति मुद्रा'** जो मुद् या हर्ष देती है उसे मुद्रा कहते हैं।[10] शिवसूत्रवार्त्तिक में भी मुद्रा शब्द की व्युत्पत्ति **'मुदं राति इति मुद्रा'** कही गई है।[11] ईश्वरसंहिता के अनुसार मुद्रा मुद् या हर्ष देती है तथा दोषों को भी द्रवित करती है।[12] ईश्वरसंहिता के मतानुसार मुद्राओं के दो रूप हैं- पहला मानसिक एवं दूसरा प्रायोगिक। इन दोनों ही रूपों में मुद्रा प्रदर्शन के पहले मन्त्र के स्मरण करने का विधान है।[13] तदनुसार मुद्रा प्रदर्शन का मुख्य उद्देश्य हिंसक वृत्तियों का निवारण एवं देवताओं का प्रसादन है।[14]

नारदीयसंहिता में बताया गया है कि भगवद् आराधना करते वक्त मानसिक या वाचिक रूप में मन्त्रों का प्रयोग होता है उसमें मुद्रा उन्हीं का कायिक प्रतीक होती है।[15] प्रस्तुत संहिता में यह भी कहा गया है कि देवताओं और मन्त्रों की अधिकता के कारण मुद्राएँ भी बहुत हो सकती है। इसलिए मुद्राओं की निश्चित संख्या नहीं कही जा सकती अतः सभी के स्वरूपों को नहीं कहा जा सकता।[16]

योगिनीहृदय में मुद्रा को मुद् (मोद, प्रसन्नता) से एवं द्रावय (द्रु का हेतुक) से ही निष्पन्न कहा है अर्थात मुद्रा विश्व की मुख्य क्रिया शक्ति है।[17] स्पष्ट है कि संसार का मोदन और द्रावण करने वाली क्रिया शक्ति का नाम ही मुद्रा है। इसकी दीपिका टीका में कहा गया है कि अनुकूल क्रिया का नाम मोदन और उसका

एक रस होना ही द्रावण है। किसी घनीभूत वस्तु का पिघलना भी द्रावण कहा जाता है। सृष्टि के पूर्व वह घनीभूत तेज स्वेच्छा से सृष्टिकर्म में प्रवृत्त होता हुआ द्रवित होकर अणु-अणु में व्याप्त होता है। उस क्रियाशक्ति की सत्ता, उत्पत्ति, वृद्धि, परिणमन, अपक्षय और नाश– इन छः के द्वारा सृष्टि संचालन रूप कार्य मोदन क्रिया है तथा इसमें शक्ति की व्याप्ति द्रावण क्रिया है। अतः भास्करराय के अनुसार–

इत्थं चेदृशमोदनद्रावनात्मक धर्मद्वय विशिष्टोक्त रूप।
क्रियाशक्त्य भिन्ना त्रिपुरसुन्दर्येव मुद्रापदवाच्या।।

इस प्रकार मोदन और द्रावण दोनों प्रकार की विशिष्ट क्रियाशक्ति से अभिन्न त्रिपुरसुन्दरी ही मुद्रा कही गई है।

अमृतानन्द योगी की दीपिका व्याख्या के अनुसार भी जब विमर्शशक्ति विश्वरूप के द्वारा विहरण की इच्छा करती है तो क्रियाशक्ति बनकर अपने विकारभूत विश्व का मोदन और द्रावण करने के कारण मुद्रा कही जाती है।

इन साक्ष्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि मुद्रा अपने अर्थ के अनुसार देवता का स्वरूप भी है और उसका प्रतिबिम्ब भी। इसके प्रयोग से शरीर और मन पर एक विशेष तरंग प्रवाहित होने लगती है तथा आत्मस्वरूप की उपलब्धि के लिए चेतना के उन स्तरों को खोलने का कार्य मुद्रा की इस शक्ति के द्वारा सम्पन्न होता है।

विष्णुसंहिता के उल्लेखानुसार "मुदं करोति देवानां राक्षासान्द्रावयन्ति च"

जो देवो को तुष्ट करती है और राक्षसवृत्तियों के धारक आसुरी देवों का परिहार करती है उसे मुद्रा कहते हैं।[18]

अजितागम के व्याख्यानुसार **"मोद-द्रावणधर्मित्वं मुद्रा शब्देन कथ्यते"** अर्थात प्रसन्नता एवं द्रावणता धर्म से जो युक्त है वह मुद्रा शब्द से कहा जाता है।[19]

तन्त्रालोक एवं स्वच्छन्दतन्त्र के निर्देशानुसार **"मुदं हर्षं राति ददाति," "परभैरवं चैतन्यद्रविणं मुद्रयति", "परावेशेन मोदयति भक्तान् द्रावयति पाशान्"**

जो आनन्द देती है, हर्षित करती है वह मुद्रा है अथवा देवताओं का मोदन और पाप समूह का विद्रावण (हरण) करने के कारण इसे मुद्रा कहा जाता है।

साधक की प्रार्थना और मुद्रा को देखकर देवता का मन साधक के प्रति द्रवित होता है, इस कारण भी इसका नाम मुद्रा है।[20]

उपरोक्त व्युत्पत्तियों का सारांश यह है कि जिस मनोदैहिक अभिव्यक्ति के द्वारा उच्चकोटि के देवी-देवताओं को सन्तुष्ट किया जाता है एवं क्षुद्र जाति के देवी-देवताओं की भीषण शक्ति का निर्गमन किया जाता है वह मुद्रा नाम से सम्बोधित होती है। सांकेतिक अर्थ की प्रधानता से मुद्रा शक्ति शारीरिक एवं मानसिक आरोग्यता प्रदान कर साधक के वांछित को पूर्ण करती है, इस तरह साधक के चित्त को भी आनन्दित करती है।

तन्त्र साधना प्रधान ग्रन्थों के अन्तर्गत अभिनवगुप्त की परात्रींशिका वृत्ति में कहा गया है कि

''मुद्राश्च सकल कर चरणादि व्यापारमय्यः क्रियाशक्तिरूपाः तत्कृतो गणः समूहात्मपरशक्ति एक रूपः''

मुद्रा हाथ-पैरादि देहांगों से किये जाने वाले व्यापार से युक्त क्रिया शक्ति रूपिणी है एवं समस्त मुद्राएँ समष्टि रूप में पराशक्ति से अभिन्न है।

देवीयामलशास्त्र में मुद्रा को प्रतिबिम्बात्मिका के रूप में दर्शाते हुए बताया गया है कि

प्रतिबिम्बोदयो मुद्रा ----

मुद्रा परसंवित् का प्रतिबिम्ब होती है

विवेककार ने प्रतिबिम्बात्मक मुद्रा शब्द की व्याख्या दो प्रकार से की है-

1. **प्रतिराभिमुख्ये, तेन बिम्बसंनिधि निमित्तीकृत्य बिम्बैक नियत उदयो यस्या इति।**

2. **बिम्बस्य अभिव्यक्ति लक्षण उदयः प्राप्तो यस्मादिति**

प्रथम व्याख्या के अनुसार बिम्ब-प्रतिबिम्ब स्वरूपिणी मुद्रा की उत्पत्ति का कारण है जबकि द्वितीय व्युत्पत्ति के आधार पर मुद्रा उसका ज्ञापक उपाय है।[21]

स्पष्टार्थ है कि बिम्ब से जिसका उदय हो यह मुद्रा की प्रतिबिम्बता है एवं बिम्ब का जिससे उदय हो वह उपायता है।

अभिनवगुप्त कृत तंत्रालोक में मुद्रा के यथार्थ स्वरूप का रेखांकन करते हुए दर्शित किया है कि जब साधक देह के रहते हुए भी परमात्म स्वरूप से एकात्म्य साध लेता है तथा इस एकात्म भाव के दृढ़ होने से जिसे स्वदेह का भान नहीं रहता, उसकी देह में स्थित जो विच्छक्ति की प्रतिकृति होती है वही

वास्तविक मुद्रा है।[22]

इस विशिष्ट स्वरूप का समर्थन करते हुए विवेककार ने उद्धरण प्रस्तुत किया है वह भी मुद्रा की आध्यात्मिक स्थिति को ही दर्शाता है। वे कहते हैं- **नादो मन्त्रः स्थितिर्मुद्रा** अर्थात मन्त्रनाद की स्थिति मुद्रा है।

कुलार्णवतन्त्र के अनुसार मुद्रा अवश्यमेव प्रदर्शित करनी चाहिए, क्योंकि वह देवताओं को मुदित करती है और मन को द्रवित (भावपूर्ण) करती है।[24]

निर्वाणतन्त्र में मुद्रा को एक स्वतन्त्र प्रक्रिया के रूप में माना गया है। तदनुसार गेहूँ, चना, चावल आदि भुने हुए चिवडे का नाम मुद्रा है।[25]

इसी प्रकार बौद्ध परम्परा मान्य प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि में मुद्रा को पाँच मकारों में चौथा मकार कहा गया है। इसका अर्थ विभिन्न प्रकार के घृत संयुक्त या भुना हुआ अन्न है। मुद्रा का एक अर्थ नारी भी किया है जिससे तान्त्रिक योगी अपने को सम्बन्धित करता है।[26] साधनमाला नामक बौद्ध ग्रन्थ में अलंकारों को मुद्रा कहा गया है।

इस तरह हम देखते हैं कि यौगिक साधनाओं में मुद्रायोग भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विविध पहलूओं से महत्त्वपूर्ण है।

सन्दर्भ-सूची

1. *(क) संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 155*
   (ख) संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. 670
2. *निर्वाणकलिका, पृ. 67*
3. *शब्द कल्पद्रुम, पृ. 743-47*
4. *अभिधानचिन्तामणि, 4/195*
5. *वैयाकरण सिद्धान्त कौमुदी, भट्टोजी दीक्षित, पृ. 1083-84*
6. *व्यवहारैरयं भेदस्तस्मादेकस्य नान्यथा।*
   मुद मोदे तु रादाने, जीवात्म परमात्मनोः ॥
   उभयोश्चैक्संवित्ति, मुद्रेति परिकीर्तिता।
   मोदन्ते देवसंघाश्च, द्रवन्ते सुरराशयः ॥
   मुद्रेति कथिता साक्षात्, सर्वभद्रार्थदायिनी।
   अस्मिन्मार्गेऽदीक्षिताये, सदासंसाररागिणः ॥

   सिद्धसिद्धान्तपद्धतिः,
   उद्धृत–जयेन्द्र योग प्रयोग, पृ. 130

7. मुद्रानिघण्टु, पृ. 68
8. तन्त्रालोक में कर्मकाण्ड, पृ. 177
9. तन्त्रालोक में कर्मकाण्ड, पृ. 177
10. शारदातिलक, पृ. 510
11. शिवसूत्रवार्त्तिक, 22
12. ईश्वरसंहिता, 2/1-3
13. ईश्वरसंहिता, 24/2
14. ईश्वरसंहिता, 24/71
15. नारदीयसंहिता, 6/50-52
16. नारदीय संहिता, 6/6-7
17. क्रियाशक्तिस्तु विश्वस्य, मोदनाद् द्रावणात्तथा
    मुद्राख्या सा यदा, संविदम्बिका त्रिकलामयी

    योगिनी हृदय, 1/57
18. तन्त्रालोक, संपा. द्विवेदी, 32/3
19. स्वच्छन्दतन्त्र, भा. 5, 11/13 की व्याख्या, पृ. 8
20. (क) तन्त्रालोक, 32/3
    (ख) स्वच्छन्दतन्त्र, भा.1, 2/102 की टीका
21. तन्त्रालोक, भा. 7, 32/2 की व्याख्या
22. तन्त्रालोक, संपा. परमहंसमिश्र भा.2, 4/200 का भाष्य, पृ. 166
23. तन्त्रालोक, संपा. परमहंस मिश्र, भा.2, 4/200 का भाष्य, पृ. 166
24. मुदं कुर्वन्ति देवानां, मनांसि द्रावयन्ति च।
    तस्मान् मुद्रा इति ख्याता, दर्शितव्याः कुलेश्वरि ॥

    कुलार्णवतन्त्र, 17/57
25. पृथुकास्तण्डुला भृष्टा, गोधूमचणकादयः।
    तस्य नाम भवेद्देवि, मुद्रा मुक्ति प्रदायिनी ॥

    निर्वाणतन्त्र, अध्याय 11
26. प्रज्ञोपाय विनिश्चयसिद्धि, 5/24 सेकोद्देश्य टीका, पृ. 56

●

अध्याय-2

मुद्रा योग के प्रकार एवं वैज्ञानिक परिशीलन

यह दृश्यमान जगत जीव और जड़ का, पुद्गल और चेतन का सम्मिश्रित रूप है। इस सृष्टि में मुख्य रूप से जीव-अजीव इन द्विविध द्रव्यों का ही अस्तित्व है। जीव द्रव्य एक है तथा अजीव द्रव्य के पाँच प्रकार माने गये हैं इस तरह छः द्रव्यों की परिकल्पना होती है।

सामान्यतया चेतन एवं अचेतन द्रव्य ही प्रमुख है। सचेतन मन और अचेतन शरीर दोनों का अपना-अपना आकार है। इन दोनों द्रव्यों से प्रतिसमय ऊर्जा रूप परमाणुओं का ग्रहण और विकिरण होता रहता है। यह ग्रहण एवं विकीर्ण की प्रक्रिया आकृति के अनुसार होती है। किसी भी पदार्थ की आकृतियाँ विशेष रूप से वृत्त – गेंद के समान गोलाकार, परिमंडल – चूड़ी के समान गोलाकार, त्रिंश – त्रिभुजाकार, चतुरंश – चौकी का आकार, आयतन – प्रलम्ब दंडे का आकार आदि कई प्रकार की होती हैं। जिस प्रकार का आकार होता है उसी आकृति की प्रति छवियाँ उस आकार से निःसृत होती रहती है।

यदि विचारधारा या शरीर की प्रवृत्तियाँ शान्त और स्थिर हैं, तो उन क्षणों में गृहीत अथवा विसर्जित ऊर्जा निरन्तर उस प्रकार की आकृतियों के रूप में प्रवाहित होती रहेगी। एक समान आकृतियों के निर्गमित होने से वायुमण्डल पर अद्भुत प्रभाव पैदा हो जाता है। इस तथ्य को अधिक स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि जैसे यंत्र विशिष्ट आकार की रचना है, मन्त्र विशिष्ट यन्त्रों से परिवेष्टित होकर अलौकिक प्रभाव छोड़ते हैं, मंत्र अधिवासित साधक द्वारा बनाए गए यन्त्र प्राणवन्त बनकर यथेष्ट फल की प्राप्ति कराते हैं वैसे ही प्राणवान व्यक्ति द्वारा निर्दिष्ट मुद्राएँ भी विशेष रहस्यमयी होती है। व्यक्ति के शुभाशुभ परिणामों के आधार पर मुद्रा का प्रभाव घटता-बढ़ता है। अतः मुद्राएँ केवल आकृतियाँ ही नहीं होती, प्रत्युत भावानुरूप शक्ति स्रोत बनकर विभिन्न तत्त्वों का प्रस्फोटन करती हैं और चराचर विश्व को प्रभावित करती हैं।

मुद्राओं के प्रकार

मुद्रा का दायरा अति विस्तृत है जैसे आसनों की संख्या अगणित है वैसे ही मुद्राओं की संख्या भी असीमित है। फिर भी भिन्न-भिन्न प्रयोजनों की अपेक्षा भेद-प्रभेदों की चर्चा निम्नानुसार प्राप्त होती है-

1. संस्कार सम्बन्धी मुद्राएँ

हमारी कुछ मुद्राएँ संस्कारगत होती है। चाहे-अनचाहे परिस्थिति उत्पन्न होते ही व्यक्ति उस मुद्रा में आ जाता है। चिन्ता के बादल मंडराते ही व्यक्ति सहज रूप से चिन्ता मुद्रा में आ जाता है, उसके हाथ अनायास मस्तिष्क या ठुड्डी पर आ जाते हैं और उस मुद्रा को देखकर हर कोई समझ जाता है कि यह चिंताग्रस्त है, तनावों से घिरा हुआ है।

किसी प्रश्न का उत्तर स्मृति-पटल पर नहीं आ रहा हो तो व्यक्ति स्वाभाविक रूप से आकाश या छत को निहारने लगता है अथवा चिन्तन मुद्रा में स्थिर हो जाता है। चित्त को स्थिर करते हुए इस मुद्रा से स्मृति को लौटाने की कोशिश करता है और प्राय: स्मृति उभर भी आती है।

सर्दी का अनुभव होते ही व्यक्ति उससे अपना बचाव करने के लिए हाथों की मुट्ठियाँ बनाकर कांख में दबा लेता है। इससे सर्दी रूकती भी है क्योंकि हाथों एवं कन्धों द्वारा शारीरिक श्रम होने से शरीर में से उष्णता पैदा होती है वही सर्दी रोकने में माध्यम बनती है।

अहंकार या बड़प्पन के भाव जागृत होते ही सीना तन जाता है, शरीर में अकड़पन आ जाता है, उसकी मुखाकृति भी बदल जाती है। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति दोनों हाथों की मुट्ठी बनाकर दोनों बगलों में रख लें तो भी उसके भीतर से अहं के संस्कार प्रकट होने लगते हैं।

पूज्यों के प्रति विनय, समर्पण, आदर या सत्कार के भाव उत्पन्न होते ही उसे अभिव्यक्ति देने के लिए व्यक्ति करबद्ध अंजलि पूर्वक नमस्कार मुद्रा में स्थित हो जाता है। यदि कोई व्यक्ति सहजतया दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार मुद्रा में खड़ा होता है तो भी उसमें विनय भावना प्रकट होने लगती है।

किसी के प्रति अनुराग का भाव उदित होने पर देखने का नजरिया बदल जाता है। यदि छोटा बच्चा है तो अपना हाथ उसके सिर पर अथवा गाल पर बिना प्रयास के पहुँच जाता है। कदाच समान आयु वाला व्यक्ति हो तो परस्पर

में हाथ मिल जाते हैं। यदि हम किसी के मस्तक पर सहज रूप से हाथ फिराते हैं तो भी प्रेम भाव प्रस्फुटित होने लगता है।

इसी तरह अंगुलियों से कड़के निकालना, आलस मरोड़ना, दाँतों से नाखून काटना, दाँत किटकिटाना आदि अनेक मुद्राएँ स्वत: उभर आती है। इन मुद्राओं की कहीं कोई शिक्षा नहीं दी जाती, इसके लिए कहीं कोई शिक्षा केन्द्र या शिक्षिकाएँ नहीं होती, परिवार समाज या अड़ोस-पड़ोस के बीच रहते हुए किसी को देखकर भी इस तरह की मुद्राएँ नहीं सीखी जाती है। बल्कि ये संस्कारगत रूप से अपने आप ही उभर आती हैं और व्यक्ति इनका उपयोग कर लेता है।

2. नृत्य सम्बन्धी मुद्राएँ

आदिम युग में जब भाषा पर्याप्त रूप से विकसित नहीं हो पायी थी, तद्युगीन प्रजातियाँ सांकेतिक आकृतियों के माध्यम से पारस्परिक संवाद करती थी। उसके पश्चात भगवान ऋषभदेव ने लिपिकला, नृत्यकला आदि का शिक्षण दिया तबसे नृत्य आदि के हाव-भाव द्वारा भावाभिव्यक्ति की जाने लगी। हाथों एवं पैरों दोनों अंगों के प्रत्यावर्तन से मुद्राओं का निर्माण होता है।

पैरों के संचालन से निष्पन्न मुद्रा के तीस प्रकार बताये गये हैं।

यहाँ हमारा अभिप्रेत हाथों की मुद्राओं से है। सर्वप्रथम भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में नृत्य हस्त की 30 मुद्राओं का वर्णन प्राप्त होता है। भरत मुनि ने असंयुक्त हस्त की 24 और संयुक्त हस्त की 13 मुद्राओं का भी निरूपण किया है। इसी नाट्यशास्त्र का अनुसरण करते हुए विष्णुधर्मोत्तर पुराण, समरांगण सूत्रधार, नृत्याध्याय आदि ग्रन्थों में भी नृत्य मुद्राओं का वर्णन प्राप्त होता है। संगीत रत्नाकर में नृत्य के आधार पर 24 प्रकार की मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। इन मुद्राओं के माध्यम से 24 प्रकार के अलग-अलग भावों को अभिव्यक्त किया जा सकता है। ये मुद्राएँ नृत्य जगत की सांकेतिक भाषा कही जा सकती हैं। इन मुद्राओं के नाम एवं उनके द्वारा अभिव्यक्त भावों की तालिका निम्न प्रकार है[1]–

1. पताका मुद्रा– झण्डा, सूर्य, राजा, महल, शीत, ध्वनि आदि।
2. त्रिपताका मुद्रा– सूर्यास्त, सम्बोधन, शरीर, भिक्षायाचना आदि।
3. हंसपक्ष मुद्रा– मित्र, पर्वत, चन्द्र, वायु, केश, पुकारना आदि।

4. हृदय मुद्रा– सागर, स्वर्ग, मृत्यु, ध्यान, स्मृति, सम्पूर्ण आदि।
5. अर्धचन्द्र मुद्रा– क्यों, कहाँ, आकाश, ईश्वर, प्रारम्भ आदि।
6. मकर मुद्रा– किरण, मक्खी, चूड़ी, वेद आदि।
7. सूचीमुख मुद्रा– भौंह, दुम, कूदना, संसार, महीना आदि।
8. हंसास्य मुद्रा– दृष्टि, उज्जवल, लाल, काला, पंक्ति आदि।
9. शिखर मुद्रा– मार्ग, नेत्र, पैर, चलना, खोजना आदि।
10. ऊर्णनाभ मुद्रा– चीता, घोड़ा, कमल, बर्फ, फल आदि।
11. मुकुल मुद्रा– वानर, भेड़िया, कोमल आदि।
12. शुकतुण्ड मुद्रा– पक्षी।
13. कर्तरीमुख मुद्रा– पुरूष-गृह, पाप, ब्राह्मण, शुद्धता आदि।
14. मृगशीर्ष मुद्रा– हिरण।
15. अंजलि मुद्रा– अग्नि, घोड़ा, शेर, क्रोध, वर्षा, डाली आदि।
16. वर्धमान मुद्रा– कानों का कुण्डल, कुआँ, महाव्रत, योगी आदि।
17. पल्लव मुद्रा– भैंस, प्रमाण, शर्त, धुआँ, वज्र आदि।
18. कपित्थक मुद्रा– स्पर्श करना, जाल, संदेश, घूमना, पृष्ठ आदि।
19. सर्पशीर्ष मुद्रा– सर्प।
20. कटकमुख मुद्रा– बांधना, तीर से मारना।
21. कटक मुद्रा– कृष्ण, विष्णु, स्वर्ण, दर्पण, नारी आदि।
22. भ्रमर मुद्रा– हाथी के कान, छाता आदि।
23. मुष्टि मुद्रा– आज्ञा, मन्त्री, औषधि, वरदान, आत्मा।
24. अराल मुद्रा– वृक्ष, मूर्ख, दुष्ट।

आशय यह है कि उक्त 24 मुद्राएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि इन प्रत्येक के द्वारा कई अर्थों का बोध किया जा सकता है। इसी तरह अन्य मुद्राओं के वैशिष्ट्य को भी समझना चाहिए। यहाँ 24 मुद्राओं का उल्लेख तो उदाहरण मात्र है।

3. बहिर्जगत एवं आभ्यन्तर जगत सम्बन्धी मुद्राएँ

बहिर्जगत से तात्पर्य शारीरिक, भौतिक, सांसारिक जगत है तथा आभ्यन्तर जगत से अभिप्राय मानसिक, धार्मिक, भावनात्मक जगत है।

मुद्रा विज्ञान सागर की भाँति विशाल है। जिस तरह समुद्र में हीरे-कंकर

आदि अनेक तरह की वस्तुएँ समाहित रहती है उसी तरह मुद्रायोग के अन्तर्गत स्थूल-सूक्ष्म, सामान्य-विशिष्ट, सरल-कठिन, सहज-श्रमसाध्य कई तरह की मुद्राओं का समावेश है।

अभ्यास साध्य– यदि ग्रन्थों के आधार पर इस उपशीर्षक की चर्चा करते हैं, तो कहा जा सकता है कि वैदिक परम्परा के घेरण्डसंहिता, शिवसंहिता, हठयोगप्रदीपिका, योगचूड़ामणिउपनिषत् योगातत्त्वोपनिषत्, विष्णुसंहिता आदि में विवेचित मुद्राएँ बाह्य और आभ्यन्तर उभयजगत को प्रभावित करती हैं। ये मुद्राएँ प्राय: श्रमसाध्य, कठिन एवं रहस्यमयी हैं। इन मुद्राओं का प्रयोग करने से अन्तरंग जगत अधिक प्रभावित होता है। बाह्य स्तर पर सर्व सिद्धियों की प्राप्ति होती है तथा हर तरह की बीमारियों का शमन होता है। अध्यात्म स्तर पर षट्चक्रों का भेदन होता है, कुण्डलिनी शक्ति जागृत होती है और मोक्ष लक्ष्मी की उपलब्धि होती है।

इन मुद्राओं का अभ्यास मूलत: आत्मशक्तियों को उद्घाटित करने के उद्देश्य से किया जाता है। बाह्य उपचार की भावना गौण रहती है उपरान्त जैसे धान्य की फसल में गेहूँ आदि की प्राप्ति होने के साथ-साथ घास-तृण आदि बिना प्रयत्न के प्राप्त हो जाते हैं वैसे ही इन मुद्राओं के द्वारा आध्यात्मिक एवं शारीरिक दोनों तरह के लाभ प्राप्त होते हैं। इन्हें सिद्ध करने में परमयोग की अपेक्षा रहती है अत: इन मुद्राओं में सामान्य रूप से आसन, प्राणायाम, बन्ध एवं धारणाओं का प्रयोग किया जाता है। जन सामान्य के द्वारा इन मुद्राओं का पूरा उपयोग नहीं किया जा सकता। साथ ही ऐसे प्रयोगों के लिए सम्यक् प्रशिक्षण भी आवश्यक है। इस तरह मुद्राओं का उक्त प्रकार अभ्यास साध्य कहा जा सकता है।

अभ्यास-अनभ्यास साध्य– जैन परम्परा से सम्बन्धित तिलकाचार्यसामाचारी, सुबोधासामाचारी, निर्वाणकलिका, विधिमार्गप्रपा, आचारदिनकर आदि ग्रन्थों में उल्लिखित मुद्राएँ भी उभय जगत को स्पर्श करती हैं। शारीरिक स्वस्थता के साथ-साथ भावनात्मक विकास में भी पूर्ण मदद करती हैं किन्तु प्रयोग की दृष्टि से कुछ श्रमसाध्य, कठिन एवं सूक्ष्म हैं तो कुछ सरल, सहज एवं स्थूल हैं।

उदाहरण के तौर पर सौभाग्य मुद्रा, योनि मुद्रा, गरूड़ मुद्रा, यथाजात

मुद्रा, धनु:संधान मुद्रा, वज्र मुद्रा आदि को श्रमसाध्य मुद्राओं के अन्तर्गत माना जा सकता है। इसके सिवाय नाराच मुद्रा, परशु मुद्रा, आवाहन मुद्रा, संनिधानी मुद्रा, नमस्कार मुद्रा, अंजलि मुद्रा इत्यादि की परिगणना सहज मुद्राओं में की जा सकती है।

खास तौर पर इन मुद्राओं का उल्लेख किसी तरह की शारीरिक अथवा यौगिक उपलब्धियों को लक्षित करके नहीं किया गया है प्रत्युत प्रतिष्ठा, पूजोपासना, जाप, अभिमन्त्रण, देवआह्वान, दुष्ट शक्तियों का निवारण इस तरह के धार्मिक अनुष्ठानों के सन्दर्भ में मिलता है।

पूर्वनिर्दिष्ट ग्रन्थों का अध्ययन करने से यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है कि इनमें वर्णित मुद्राएँ प्रसंग विशेष पर ही दिखायी जाती है किसी तरह के उपचार हेतु इन मुद्राओं का सामान्यत: प्रयोग नहीं होता है। यद्यपि प्रयोग करते समय अपनी गुणवत्ता के अनुसार शरीर, मन एवं चेतना को स्वस्थ रखने में भी फायदा करती है। ध्यातव्य है कि इन मुद्राओं का विशिष्ट प्रयोग आचार्य, पदस्थ मुनि अथवा निष्णात विधिकारक के द्वारा किया जाता है।

इस तरह जैन ग्रन्थों में निर्दिष्ट मुद्राएँ श्रम अपेक्षित एवं श्रम निरपेक्ष दोनों स्तर की हैं।

अनभ्यास साध्य– अर्वाचीन प्रतियों में उपलब्ध अधिकांश मुद्राएँ सरल, सहज एवं प्रायोगिक है। ये मुद्राएँ बिना किसी परम्परा भेद के जन-सामान्य में भी अत्यधिक प्रचलित हैं। वर्तमान युग में इस तरह की मुद्राओं का प्रयोग दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इन मुद्राओं को चिकित्सा मुद्रा की कोटि में परिगणित कर लिया गया है। इनके प्रयोग शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक विकास की दृष्टि से अत्यन्त फलदायी सिद्ध हो रहे हैं।

इन मुद्राओं का अभ्यास मुख्यतया उपचार के रूप में किया जाता है। इनमें ज्ञान मुद्रा, सूर्य मुद्रा, वरूण मुद्रा, आकाश मुद्रा, शंख मुद्रा, प्राण मुद्रा, अपान मुद्रादि विशिष्ट कोटि की मुद्राएँ हैं।

तन्त्र सम्बन्धी मुद्राएँ

सामान्यतया मुद्रा विज्ञान तन्त्र साधना का ही एक प्रकार है, इसलिए तन्त्र प्रधान ग्रन्थों में अनेक तरह की मुद्राएँ उल्लिखित हैं। यदि उन मुद्राओं का स्वरूप अथवा प्रयोजन की दृष्टि से वर्गीकरण किया जाये तो निम्न चार प्रकारों

में समग्र मुद्राओं का समावेश हो सकता है।

तान्त्रिक ग्रन्थों के अनुसार मुद्रा के चार प्रकार ये हैं–

1. कायिकी– सभी अवस्थाओं में एकरूप रहने वाली मुद्रा।
2. करजा– अंगुली विन्यासादि के भेद से त्रिविध प्रकार की मुद्रा।
3. वाचिकी– मन्त्र तन्मयता रूप मुद्रा।
4. मानसी– ध्येय तन्मयता रूप मुद्रा।[2]

स्वच्छन्द तन्त्र की टीका में मुद्रा के तीन प्रकार बताये गये हैं जो उक्त नामों से मिलते-जुलते हैं-

1. मानसी मुद्रा– गुरुमुख में स्थित होने वाली मुद्रा।
2. वाचिकी मुद्रा– मन्त्र से उत्पन्न होने वाली मुद्रा।
3. कायिकी मुद्रा– देह के अंगविक्षेपों पर आधारित मुद्रा।[3]

मुद्राओं का यह विभागीकरण समग्र मुद्राओं की अपेक्षा सटीक मालूम होता है।

विविध ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में मुद्रा योग का वैशिष्ट्य

भारत देश की मूल्यवान सभी संस्कृतियों ने मुद्रा योग को स्थान दिया है। श्रमण एवं वैदिक दोनों परम्पराओं के ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण चर्चा प्राप्त होती है। सभी सन्त साधकों ने मुद्रा विज्ञान को आवश्यक बतलाया है। मुद्रा शुभाशुभ भावों की अभिव्यंजना का सशक्त माध्यम है।

घेरण्डसंहिता में इसके महत्त्व की चर्चा करते हुए कहा गया है कि योगीजनों ने मुद्रा साधना को प्राणायामों और योगासनों से भी अधिक महत्त्व दिया है। योगासनों से शरीर का अस्थि-समूह दृढ़ होता है जबकि गोपनीय (हठयोग सम्बन्धी) मुद्राएँ कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने के लिए और चक्र भेदन के लिए उपयोगी होती है।

घेरण्डसंहिता में मुद्राओं की महत्ता का दिग्दर्शन कराते हुए यह भी कहा गया है–

इदं तु मुद्रा पटलं, कथितं चण्डकापाले ।
वल्लभं सर्वसिद्धानां, जरामरणनाशकम् ।।3/94

हे चण्डकापाल! यह मुद्रा समूह सब सिद्धों (योगियों) को प्रिय है। वृद्धावस्था और मृत्यु का नाश करने वाली है।

मुद्राओं का उपयोग द्वयर्थक माना जाता है एक तो स्वास्थ्यवर्धन की दृष्टि से और दूसरा मानसिक बल की दृष्टि से भी मुद्राएँ उस क्रिया का ज्ञान करवाती है जो कि शरीर के स्वयं कार्य करने वाले यन्त्रों और स्नायुओं से सम्बन्धित हैं।

योगशास्त्र के अनुसार संपूर्ण शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियों का जाल बिछा है। क्षुरिकोपनिषत् में कहा गया है कि **''द्वासप्तति सहस्त्राणि प्रतिनाडीषु तैतिलम्''** अर्थात समस्त सूक्ष्मनाड़ियों की संख्या बहत्तर हजार है। यही नाडियाँ शरीर के विभिन्न अवयवों का संचालन करती हैं। योगियों के अनुसार यह एक ऐसी नलिका पंक्ति है, जिसके द्वारा समूचे शरीर को शक्ति प्राप्त होती रहती है इसलिए इस नाड़ीजाल को जीवनीय शक्ति कहा जाता है और उस शक्ति का अनुभव मुद्रा साधना के योगीपुरुष ही भलीभाँति कर पाते हैं। क्योंकि इस तरह के अनुभव के लिए मुद्राभ्यास ही एक ऐसी प्रखर प्रक्रिया है जो मुनष्य को अपने विषय में, स्वयं के शरीर और उसकी शक्ति के विषय में सम्यक् ज्ञान प्राप्त करवा सकती है।[4]

योगाभ्यासी पुरुषों ने मुद्रा के उच्चतम परिणामों को प्रत्यक्षत: अनुभूत किया है। उसी अनुभव के आधार पर उन्होंने सयुक्तिक कहा है कि जब तक यौगिक मुद्राओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त न कर लिया जाए, तब तक योग सिद्धि अशक्य है।

इसके महत्त्व को उजागर करते हुए वेदशास्त्र कहते हैं कि एकदा शिवजी ने पार्वती से कहा कि हे देवि! मैंने तुम्हारे समक्ष जिन मुद्राओं की चर्चा की है उन्हें आत्मसात कर लेने पर समस्त प्रकार की सिद्धियाँ हासिल हो जाती है।[5] यह मुद्रा ज्ञान अत्यन्त गोपनीय है इसलिए चाहे जिस व्यक्ति के लिए इस स्वरूप को उद्घाटित मत करना अर्थात जो लोग इन्हें (हठयोग को) नहीं कर सकते हैं, उनके समक्ष कह देने से नि:सन्देह हानि हो सकती है क्योंकि यह इतनी सरल साधारण क्रिया नहीं है जिसे हर कोई मनुष्य कर सके। इसका अभ्यास अनुभवी, दृढ़ प्रतिज्ञ, विरक्त, संयमी, आत्मज्ञानी या आत्मजिज्ञासु पुरुष ही कर सकते हैं।

नि:सन्देह हठयोग की मुद्राएँ योगियों के लिए अष्टसिद्धियों और नवनिधियों को देने वाली है। इसी के साथ प्रसन्नतावर्धक एवं देवताओं के लिए दुर्लभ हैं।

मालिनी विजयोत्तर तन्त्र में मुद्रा के महत्त्व को विश्लेषित करते हुए कहा गया है कि मुद्रा शिव की शक्ति स्वरूपा है तथा इसके द्वारा संरक्षित साधक मन्त्रसिद्धि को प्राप्त करता है।[6]

तन्त्रलोक के व्याख्याकार जयरथ ने भी मुद्रा को शिव की शक्ति स्वरूपा माना है और वह किस अर्थ में अतुलशक्ति को धारण किये हुए हैं उसका चित्रण आध्यात्मिक स्तर पर किया है। वे कहते हैं जिस प्रकार मगर के मुख में बार-बार गमनागमन कर रही मछली मृत्यु का ग्रास बन सकती है ठीक उसी प्रकार हम सभी महाभयंकर संसार रूपी मृत्यु के गोद में पड़े हुए हैं, किन्तु मुद्रा की साधना व्यक्ति को संसार से मुक्त कराती है एवं विषय-विकार जन्य बन्धनों को विगलित करती है इस दृष्टि से मुद्रा शिवशक्ति रूप है।[7]

तन्त्रलोक में किंचित् पुनरावर्तन के साथ यह भी निर्दिष्ट किया गया है कि मुद्रा समस्त तरह के पाशजाल से मुक्त कराती है, देह एवं पुर्यष्टक सम्बन्धी संस्कारों को द्रवित करती है तथा मन्त्र, योग, क्रिया एवं चर्या को एक रूप में मुद्रित (गुम्फित) करती है।[8]

अभिनवगुप्त ने मालिनीविजय वार्त्तिक में मुद्रा की विशिष्टता का मूल्यांकन करते हुए कहा है कि भैरवीय रस से उद्रेचन को प्राप्त घूर्णमान कुलयोगी का जो मोदन द्रावणात्मक शरीरगामी समावेश होता है वह मुद्रा है।[9]

विष्णु संहिताकार ने इसका मूल्य आंकते हुए बतलाया है कि मुद्रा सामान्य प्रयोग या सामान्य साधना नहीं है यदि इस योग का सम्यक रीति से अनुपालन किया जाए तो वह अतुल शक्ति संपन्न देवात्माओं को प्रसन्न कर देती है और दुष्ट प्रकृति वाले राक्षसों को द्रवित (ढीला) कर देती है। तान्त्रिकों के अनुसार यह विशिष्टता सर्व मुद्राओं में है।

संक्षेप में कहें तो यौगिक मुद्राओं का महत्त्व इतना अधिक है कि यदि निष्प्रयोजन अथवा अन्य दृष्टि से मुद्राओं का प्रयोग किया जाए तो व्यर्थ हो जाता है। इतना ही नहीं, उन पर देवता कुपित हो जाते हैं और अनुष्ठित कार्य की सिद्धि का हरण कर लेते हैं। अत: मुद्रा साधना एवं मुद्रा प्रयोग गुरुगम पूर्वक एकान्त-शान्त-पवित्र वातावरण में करना चाहिए।

अनेक शास्त्रों में मुद्रा को सर्वोत्तम बताते हुए यहाँ तक कहा गया है कि **''नास्ति मुद्रासमं किंचित् सिद्धिदं क्षिति मण्डले''** अर्थात इस पृथ्वी पर मुद्रा

के समान सफलता देने वाला अन्य कोई कर्म नहीं है। जो साधक नियमित तीन घण्टा मुद्राभ्यास करते हैं वे मृत्यु विजेता बन जाते हैं।

मुद्रा योग की आवश्यकता एवं उपादेयता

वर्तमान में वैचारिक एवं प्राकृतिक प्रदूषण बढ़ रहा है। इसका स्पष्ट प्रभाव मनुष्य के शरीर, आचार, विचार एवं व्यवहार जगत पर देखा जा सकता है। मुद्रा योग Switch Board की भाँति मानव की विभिन्न प्रकृतियों को नियन्त्रित एवं संतुलित रखता है। आज के त्वरितगामी युग में मनुष्य प्रत्येक क्रिया के शीघ्र परिणामों की अपेक्षा रखता है एवं ऐसी क्रियाओं को ही महत्त्व भी देता है।

मुद्रा साधना एक त्वरित परिणामी क्रिया है। Injection की भाँति तुरंत आंतरिक संरचना को प्रभावित करती है। इसकी इसी विशेषता के कारण विविध परिप्रेक्ष्यों में आज भी इसकी महत्ता एवं आवश्यकता है। सर्वांगीण व्यक्तित्त्व विकास के लिए यह राजमार्ग है।

आध्यात्मिक मूल्य– आंतरिक भावों का शारीरिक या मानसिक अभिव्यक्तिकरण मुद्रा है। हम देखते हैं दृश्यमान जगत स्थूल है हम प्रतिक्षण इस जगत से जुड़े रहते हैं और तथाविध क्रियाओं के अनुरूप अनुभव करते रहते हैं। भाव जगत सूक्ष्म है, अदृश्य है, अगोचर है किन्तु उसकी पहचान मुद्रायोग के बल पर नि:सन्देह की जा सकती है। जैसे अंतर्विचार सूक्ष्म होते हैं, आत्म भाव सूक्ष्म होते हैं, मनोभाव सूक्ष्म होते हैं पर मुद्रा के द्वारा वे सहज रूप से प्रकट हो जाते हैं। तब उन्हें भलीभाँति पहचाना जा सकता है। मुद्रा, भावों की अनुकृति का अमोघ साधन है। मुद्रा-इन्द्रिय से अतीन्द्रिय, मूर्त्त से अमूर्त्त, बाह्य से आभ्यन्तर जगत में प्रवेश करने का प्रमुख द्वार है।

प्रत्येक परम्परा शास्त्रोक्त मत से यह बात स्वीकारती है कि हर आत्म सत्ता में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख (शान्ति) और अनन्त शक्ति विद्यमान हैं किन्तु कर्मबद्ध अवस्था में ये शक्तियाँ न्यूनाधिक रूप से सुषुप्त रहती हैं जबकि कर्ममुक्त स्थिति में पूर्णत: प्रकट हो जाती है। इन शक्तियों के साक्षात्कार हेतु पूर्व ऋषियों ने अनेक उपाय निर्दिष्ट किये हैं उनमें मुद्रायोग को प्राथमिकता प्रदान की है। जहाँ तक संभव है प्राय: हर परम्परा में आवश्यक कर्म, आत्म उपासना, धार्मिक अनुष्ठान, मंत्र साधना आदि शुभ क्रियाएँ मुद्रा योग पूर्वक ही सम्पादित होती है। किन्हीं में यह प्रणाली अल्पाधिक हो सकती

है किन्तु मुद्राओं का प्रयोग होता अवश्य है। जैन परम्परा में षडावश्यक क्रिया रूप सामायिक, प्रतिक्रमण, वन्दन, प्रभु दर्शन, गुरु वन्दन आदि में विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का प्रयोग होता है। यहाँ प्रश्न हो सकता है कि प्रतिक्रमण इत्यादि के दौरान भिन्न-भिन्न मुद्राओं का क्या प्रयोजन है? आत्म स्वरूप की प्राप्ति हेतु देह को कष्ट देने की आवश्यकता क्यों है? आत्मलक्षी साधकों को तो एकान्त-नीरव स्थान में शान्त चित्त पूर्वक बैठ जाना चाहिए। उसके लिए यही साधना श्रेष्ठ है। परन्तु इन मुद्दों को स्पष्ट समझ लेना जरूरी है। पहली बात तो यह है कि प्राथमिक स्तर के साधकों को बाह्य आलंबन की नितांत जरूरत रहती है अत: उन्हें अष्टांग योग में से किसी एक का सहारा लेना ही होता है। इस श्रेणि के साधक नितान्तत: आत्म आश्रित नहीं रह सकते। दूसरे, शरीर की विभिन्न आकृतियों (मुद्राओं) का चेतन मन के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जिस प्रकार की मुद्रा करते हैं उसी तरह के भाव मानस पटल पर उभर आते हैं और कभी-कभी विचारों के अनुरूप भी शरीर की मुद्राएँ बनती है। कहावत हैं 'जैसे भाव वैसी मुद्रा, जैसी मुद्रा वैसे भाव।' यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि प्रत्येक व्यक्ति के शरीर में सबसे नीचे गुदा भाग पर मूलाधार चक्र है वहाँ कुण्डलिनी नाम की शक्ति निवास करती है इसे जीवन की आधार शक्ति या मूलभूत शक्ति कह सकते हैं। यह शरीरस्थ सभी तत्त्वों को आश्रय देती हुई उन सबकी मूल सत्ता के रूप में विद्यमान रहती है।

छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि हृदय की 101 नाड़ियाँ हैं उनमें से एक मस्तक भाग में प्रवेश करके अमरता की उपलब्धि करवाती है अन्यों से अमरत्व की प्राप्ति नहीं होती।[10] यह कुण्डलिनी शक्ति चैतन्य सम्पादन करने के कारण निरालम्ब होकर शुद्ध चित्त स्वरूप में स्थिर रहती है। यदि यह आधारशून्य हो जाये तो समस्त-संसार की वस्तुएँ भी आधारहीन होकर विनष्ट हो जायेंगी। जिस प्रकार सम्पूर्ण पृथ्वी का आधार शेष नाग है उसी प्रकार सभी योग तन्त्रों का आधार कुण्डली है।[11] जब गुरु कृपा से यह सुषुप्त कुण्डली जग जाती है तब सभी चक्र एवं ग्रन्थियाँ खुल जाती हैं। जब तक यह देह में सोयी रहती है तब तक जीव पशु के समान बेभान स्थिति में रहता है तथा असंख्य योगाभ्यास करने पर भी उन्हें ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती।[12] इसके जागृत होने पर चित्त विषयों से हट जाता है तथा मृत्यु भय नष्ट हो जाता है।

यह कुण्डलिनी शक्ति हठयोग प्रधान मुद्राओं के माध्यम से अतिशीघ्र जागृत होती है। हठयोग मुद्राओं का मूलभूत दृष्टिकोण इसी से सम्बन्धित जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक मुद्राएँ भी इसके जागरण में सहयोगी बनती हैं। इस तरह मुद्रा विज्ञान साधनात्मक मूल्यों को बढ़ाता है।

मानसिक मूल्य– मुद्रा मानसिक सूक्ष्म वृत्ति है। यह अन्तर्मन को मापने का सही थर्मामीटर है, स्थूल विचारों को टटोलने का दिशा यन्त्र है। मुद्रा और मन के बीच तादात्म्य सम्बन्ध है। श्रेष्ठ मुद्राएँ मन को अत्यधिक प्रभावित करती हैं। जैसे कि पद्मासन में बैठा हुआ व्यक्ति चाहे जितना यत्न करें तदुपरान्त किसी की हत्या नहीं कर सकता। इसका रहस्य यह है कि पद्मासन की प्रशस्त मुद्रा हिंसाजन्य अप्रशस्त भावों को टिकने ही नहीं देती। हम कल्पना कर सकते हैं कि एक हत्यारे की भाव मुद्रा हत्या करने से पूर्व किस तरह की होती है। हत्या करने के लिए तत्पर व्यक्ति के हाव-भाव कुछ समय पहले से ही उस रूप बन जाते हैं उसके पश्चात ही किसी प्रकार का दुष्कर्म हो पाता है। बाह्य स्तर पर जब व्यक्ति की आँखे लाल अंगारे की तरह दहकने लगती है, मुख क्रोध से रक्तवर्णी हो जाता है, स्वयं के हाथों एवं पैरों में एक विशेष प्रकार का आवेग महसूस होने लगता है, छाती अकड़ जाती है,गर्दन टाईट हो जाती है इन स्थितियों में हत्या के भाव उठते हैं और हत्या सम्भव होती है।

हम अनुभव करें जैसे ही मनस पटल पर चिंताएँ उभरने लगती है टेन्शन का चक्र प्रारम्भ होता है वैसे ही हाथ सिर पर जाकर स्थिर हो जाता है। मन में जैसे ही अभिमान की तरंगे प्रसरित होने लगती है स्कन्ध अपने आप ऊपर-नीचे होने लगते हैं। किसी के प्रति प्रेम उमड़ने पर आँख की पुतली तिरछी हो जाती है। किसी के प्रति घृणा के भाव पैदा होने पर घ्राणेन्द्रिय स्वयमेव सिकुड़ने लगती है इस तरह मनोजगत का मुद्रा पर और मुद्राजगत का मन पर तुरन्त असर पड़ता है।

जैनागमों में बताया गया है कि साधुओं को कभी भी उल्टा और साध्वियों को कभी भी सीधा नहीं सोना चाहिए। क्योंकि लिंग की अपेक्षा पुरुष द्वारा उल्टा शयन करने पर एवं स्त्री द्वारा सीधा शयन करने पर कामवासनाएँ जागृत होने की पूर्ण संभावना रहती हैं। यह भी एक प्रकार की मुद्राएँ मानी गई हैं। इस तथ्य को वैज्ञानिक भी स्वीकार करने लगे हैं कि जिस आसन या स्थान पर पुरुष बैठा

हो वह उस स्थान से उठे, तत्पश्चात 48 मिनट तक शीलनिष्ठ स्त्रियों अथवा आत्म साधकों को उस स्थान पर बैठना-सोना नहीं चाहिए। कारण कि वह स्थान निर्धारित अवधि तक उस व्यक्ति के शुभाशुभ परमाणुओं से परिव्याप्त रहता है। इस वर्णन से स्पष्ट होता है कि जन सामान्य की जीवन शैली के साथ मुद्रा का प्रगाढ़ सम्बन्ध है।

भावनात्मक मूल्य–भाव परिवर्तन की दृष्टि से भी मुद्रा योग आवश्यक महसूस होता है। अनुभवी सन्तों का कहना है कि जब तीव्र क्रोध का उदय हो, तब कुछ क्षण कायोत्सर्ग मुद्रा में खड़े हो जाना चाहिए। उस स्थिति में क्रोध स्वत: शान्त हो जाता है। जब अहंकार की भावना जागृत होती हो उस समय किसी पूज्य की प्रतिकृति के सम्मुख दोनों हाथ जोड़कर एवं मस्तक झुकाकर खड़े हो जाना चाहिए, उस विनीत मुद्रा से अहंकार तुरन्त विलीन हो जाता है। जब मन में वासना के संस्कार जागृत हो रहे हो उस समय पद्मासन मुद्रा में बैठ जायें तो वासना शान्त हो जाती है। जब किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति राग भाव की तीव्रता बढ़ रही हो उस समय सिद्धासन या सिद्धयोनि में बैठने से राग वैराग्य में परिवर्तित हो जाता है। जब वायु विकृति के कारण जी मिचला रहा हो उन क्षणों में वज्रासन मुद्रा में बैठने से तुरन्त फायदा होता है। इस तरह भावनात्मक स्तर पर भी मुद्रा योग की उपादेयता सिद्ध होती है।

शारीरिक मूल्य– मानव शरीर प्रकृति की सर्वोत्तम कृति है। यह सम्पूर्ण प्रकृति एवं हमारा शरीर पंच तत्त्वों से निर्मित है। अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी और जल इन पाँच तत्त्वों की विकृति के कारण ही प्रकृति में असंतुलन और शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं, किन्तु मानव शरीर की पाँचों अंगुलियाँ पंच तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं, जिन्हें इन अंगुलियों की सहायता से घटा-बढ़ाकर संतुलित किया जा सकता है।

मुद्रा विज्ञान के अनुसार हमारी अंगुलियाँ ऊर्जा का नियमित स्रोत होने के साथ-साथ एन्टीना का कार्य करती हैं। मुद्राओं के माध्यम से अंगुलियों को मिलाने, दबाने, स्पर्श करने, मरोड़ने तथा कुछ समय तक विशेष आकृति बनाये रखने से तत्त्वों में परिवर्तन होता है। अंगूठे को तर्जनी, मध्यमा, अनामिका और कनिष्ठिका के मूल में लगाने से उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व में वृद्धि होती है, अंगुलियों के प्रथम पौर में स्पर्श करने पर तत्त्व सन्तुलित होता

है तथा इन अंगुलियों को अंगूठे के मूल पर संयोजित कर अंगूठे द्वारा दबाने से उस तत्त्व की कमी होती है। इस प्रकार विभिन्न मुद्राओं के माध्यम से तत्त्वों को इच्छानुसार घटाकर अथवा बढ़ाकर सन्तुलित किया जाता है। परिणामत: यह जीवन शारीरिक एवं मानसिक व्याधियों से राहत पाता है।

मुद्राओं का स्नायु मण्डल और यौगिक चक्रों पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है फलत: षट्चक्र जागृत होते हैं, सुषुप्त शक्तियों का भेदन होता है तथा संसाराभिमुख जीवन आत्मदिशा की ओर अग्रसर बनता है। इस तरह व्यक्ति शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त करके अपने जीवन को सुख-समृद्धि से समन्वित कर लेता है।

सामान्य तौर पर मुद्राओं द्वारा व्यक्ति का शरीर संतुलित एवं स्वस्थ रहता है, अन्त:स्रावी ग्रंथियों में पिट्यूटरी ग्रन्थि अधिक शक्तिशाली हो जाती है। इससे शरीर में रोग की प्रतिरोधक शक्ति बढ़ती है और अन्तस् चेतना अनावश्यक विकल्पों से रहित हो जाती है।

इस तरह निर्विवाद सिद्ध होता है कि मुद्रायोग प्रत्येक साधक के स्वस्थ एवं समृद्ध जीवन शैली के निर्माण हेतु एक आवश्यक प्रयोग है। मुद्राएँ न केवल शारीरिक स्तर पर कार्य करती हैं अपितु व्यक्ति के मानसिक, वाचिक, भावनात्मक स्तर को भी प्रभावित करती हैं। व्यक्ति की जीवनशैली, गतिविधियाँ, प्रवृत्तियों का संचालन और नियन्त्रण में भी मुद्राएँ अपनी विशिष्ट भूमिका अदा करती हैं। मुद्राओं के सही एवं संतुलित उपयोग से व्यक्ति अनूकुल अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों और वातावरण के बीच भी अपना संतुलित जीवन यापन करता हुआ स्वस्थ और दीर्घायु जीवन जीते हुए अपने लक्ष्य को उपलब्ध कर सकता है।

ध्यान और मुद्रा

ध्यान अध्यात्म साधना की परिपूर्णता का प्रकृष्ट प्रयोग है। ध्यान से सर्वकार्यों की सिद्धि संभव है। चित्त की एकाग्रता को ध्यान कहा जाता है। लौकिक कार्य हो अथवा भौतिक, वैयक्तिक कार्य हो अथवा सामाजिक, उनकी सफलता हेतु मन की एकाग्रता आवश्यक है। जब भौतिक समृद्धि की प्राप्ति के लिए भी शरीर एवं मन की स्थिरता जरूरी होती है तब आभ्यन्तर समृद्धि के लिए इसका मूल्य कितना हो सकता है यह अनुभवगम्य है।

घेरण्डसंहिता में मन की स्थिरता के लिए मुद्रा प्रयोग का निर्देश किया गया है। हठयोग जनित सप्त अंगों के प्रयोजन एवं फलित भिन्न-भिन्न हैं और उनमें मुद्रा का सुफल स्थिरता कहा गया है। इस उद्धरण के आधार पर कहा जा सकता है कि मुद्राभ्यास ध्यान का अभिन्न अंग है। मुद्राओं के माध्यम से ध्यान साधना को उत्तरोत्तर विकसित किया जा सकता है।

गहराई से निरीक्षण किया जाए तो स्पष्ट होता है कि ध्यान की किसी भी अवस्था में मुद्रा अवश्य संभावी होती है। फिर इतना तो सर्वविदित है कि ध्यान किसी आसन विशेष में ही किया जाता है और वह आसन एक निश्चित आकार में ढला होता है यानी साधक एक मुद्रा में सुस्थिर होता है।

इस तरह ध्यान में मुद्रा की उपस्थिति नि:सन्देह रहती है तथा मुद्रा का प्रयोग भी ध्यान के अनुकूल आसन में ही किया जाता है, जैसी-तैसी स्थिति में मुद्राभ्यास वर्जित है। अत: निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि ध्यान में चित्त स्थिर बनाये रखने के लिए मुद्रा जितनी आवश्यक है, मुद्रा सिद्धी के लिए ध्यानासन भी उतना ही जरूरी है। आसन और आकार के अनुरूप भावों की सृष्टि होती है।

आसन और मुद्रा

आसन और मुद्रा दोनों यौगिक साधना के प्रमुख अंग हैं यद्यपि बाह्य और आभ्यन्तर स्वरूप की अपेक्षा अन्तर दिखाई देता है। सामान्यत: आसनों के विभिन्न प्रकार भी मुद्राओं का ही एक रूप है जिन्हें अंग्रेजी में पोज या पोस्चर कहा जाता है। ये आकृतियाँ मुख्य रूप से प्राणियों के शरीर रचना की अनुकृतियाँ होती है। स्वरूपतया आसन स्थूल होते हैं। आसनों की उच्चतम भूमिकाओं में मुद्राओं का उदय होता है। जिस तरह शब्द की सूक्ष्म ध्वनि नाद है उसी तरह शरीर के अन्तरंग सूक्ष्म स्पन्दन का अवतरण मुद्रा है। जब ध्यान काल में मुद्राओं का अवतरण सहज और सुलभ होने लगता है तभी साधक ध्यान के क्षेत्र में उत्तरोत्तर प्रगति करता है। वह प्रगति बिना प्रयास के सहज एवं सुगम होती है। यदि मुद्रा के माध्यम से परम शक्ति रूप प्राण ऊर्जा उत्पन्न हो रही हो तो उस स्थिति में योग्य दिशा निर्देशक के अनुसार ध्यान साधना को टिकाये रखना चाहिए। ध्यान साधना के द्वारा आवश्यक ऊर्जा का सदुपयोग और अनावश्यक ऊर्जा का शमन किया जा सकता है। इसे धारणा, प्रत्याहार और ध्यान में परिवर्तित एवं प्राण ऊर्जा को सुषुम्ना नाड़ी में प्रविष्ट करवाकर

ऊर्ध्वमुखी बनाया जा सकता है। इस प्रकार सुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जागृत किया जा सकता है।

हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है कि कुंडलिनी शक्ति जागृत हुए बिना चक्रों का भेदन नहीं होता है। मूलाधार चक्र स्थित सुषुप्त शक्ति को उजागर करने का एक उपाय मुद्राओं का अभ्यास है। मुद्राएँ सूक्ष्म शरीर को प्रभावित करती हैं इससे प्राण शरीर सक्रिय हो जाता है। इस चर्चा के आधार पर कहा जा सकता है कि मुद्राएँ आसनों का विकसित रूप है।

आसनों में इन्द्रियाँ प्रधान और प्राण गौण होते हैं जबकि मुद्रा प्रयोग में इन्द्रियाँ गौण और प्राण प्रधान होते हैं। निम्न तालिका से यह बात अधिक सुस्पष्ट होती है।

आसन	**मुद्रा**
स्थूल	सूक्ष्म
शरीर प्रधान	भाव प्रधान
इन्द्रिय प्रधान	प्राण प्रधान
अष्टांगों में तीसरा स्थान	अष्टांगों में आसन और प्राणायाम के बीच की अवस्था।[13]

हठयोग और मुद्राएँ

योगी पुरुषों द्वारा आचरित एवं निर्दिष्ट अनेक साधनाओं में से एक कठोर साधना का नाम है हठयोग।

'हठ' शब्द में प्रयुक्त हकार और ठकार क्रमशः सूर्यनाड़ी और चन्द्रनाड़ी के द्योतक हैं।[14] सूर्यनाड़ी और चन्द्रनाड़ी का पारस्परिक संयोग, दोनों नाड़ियों की एकरूपता तथा दोनों की द्वन्दात्मक स्थिति का सम्मिलन हठयोग कहलाता है।[15] यहाँ सूर्यनाड़ी का अभिप्राय पिंगला नाड़ी से है तथा चन्द्रनाड़ी का अभिप्राय इड़ा नाड़ी से है। इन अभिप्रायार्थ नाड़ियों का वास क्रमशः शरीर के दक्षिण एवं वाम भाग में माना गया है।[16] हठयोग साधना के छः अथवा सात प्रकार माने गये हैं।

इनमें सात अंगों की परिकल्पना अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। वे सात प्रकार निम्न हैं-1. षटकर्म 2. आसन, 3. मुद्रा, 4. प्रत्याहार, 5. प्राणायाम 6. ध्यान और 7 समाधि। घेरण्ड संहिता में हठयोग के इन चरणों का उद्देश्य

बतलाते हुए कहा गया है कि प्रत्येक साधक को शरीर शुद्धि एवं मानसिक पवित्रता के लिए सात साधन जीवन व्यवहार में सबसे पहले अपनाने चाहिए- शोधन, दृढ़ता, स्थैर्य, धैर्य, लाघव, प्रत्यक्ष और निर्लिप्त। इनमें शोधन (शुद्धि) के लिए षट्कर्म (धौति, वस्ति, नेति, लौकिकी, त्राटक और कपाल भाँति), दृढ़ता के लिए आसनों का अभ्यास, स्थिरता वृद्धि के लिए मुद्रायोग, धैर्य अभिवृद्धि के लिए प्रत्याहार, लघुता भाव विकसित करने के लिए प्राणायाम, ध्येय का साक्षात्कार करने के लिए ध्यान और सर्व पदार्थों से निर्लिप्त होने के लिए समाधि का अभ्यास करना चाहिए। इस क्रम से हठयोग की साधना करने वाला निश्चित शुद्ध अवस्था को प्राप्त करता है, इसमें कोई संदेह नहीं है।[17]

उपरोक्त विवेचन से सुस्पष्ट होता है कि मुद्राएँ हठयोग का एक अंग है। हठयोग का दायरा विस्तृत है जबकि मुद्रा उस सागर का एक बिन्दु रूप है। इसके बावजूद भी मुद्रा का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व है। यों कहा जाए तो मुद्रा हठयोग का अत्यावश्यक योगांग है। इस योग के अभाव में हठयोग पूर्णयोग नहीं कहा जा सकता है। हठयोग की समग्र साधना में मुद्राएँ महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हठयोग और मुद्रा में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। जहाँ हठयोग वहाँ मुद्रायोग और जहाँ मुद्रायोग वहाँ हठयोग अवश्यंभावी होता है।

यहाँ इतना स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि हठयोग सम्बन्धी मुद्राओं एवं अन्य मुद्रा प्रकारों में पारस्परिक भिन्नता है। इस शीर्षक के अन्तर्गत हठयोग सन्दर्भित मुद्राओं को प्रधानता दी गई है और इससे सम्बन्धित मुद्रा साधना के सभी प्रकार कठिन हैं। सामान्य साधक इस योग को नहीं साध सकता है। इस विद्या को अनुभवी गुरु के मार्ग दर्शन से ही प्राप्त किया जा सकता है। योगियों द्वारा खोजी गई ये मुद्राएँ अदभुत हैं तथा शरीर में चैतन्य तत्त्व की अनुभूति कराने वाली कुंजी है। जबकि अन्य मुद्राएँ जैसे ज्ञान मुद्रा, शंख मुद्रा, प्राण मुद्रा, वरूण मुद्रा, सूर्य मुद्रा, आकाश मुद्रादि सहज रूप से की जा सकती है।

वर्गणा और मुद्रा

वर्गणा जैन धर्म का पारिभाषिक शब्द है। सजातीय परमाणु समूह को वर्गणा कहते हैं। वर्गणाएँ आठ प्रकार की होती हैं–

शरीर सम्बन्धी पाँच तथा भाषा, मन एवं श्वासोश्वास की एक-एक इस तरह कुल आठ है।

1. औदारिक शरीर– रक्त-अस्थि, मांस-मज्जा से निर्मित मनुष्य एवं तिर्यंच का शरीर।
2. आहारक शरीर– विशिष्ट लब्धि सम्पन्न चरम देहधारी मुनि द्वारा निर्मित शरीर।
3. वैक्रिय शरीर– विशिष्ट पुद्गल परमाणुओं से निर्मित देवता एवं नारकी जीवों का शरीर।
4. तेजस शरीर– विशिष्ट तरह की ऊर्जा द्वारा निर्मित चारों गति के जीवों का भोजन पचाने वाला शरीर।
5. कार्मण शरीर– कर्म परमाणुओं से निर्मित शरीर।
6. भाषा वर्गणा– भाषा के ग्रहण करने योग्य पुद्गल परमाणुओं का समूह।
7. मनो वर्गणा– स्वयं के और दूसरों के मन को जाना जा सकें ऐसे पुद्गल परमाणुओं का समूह।
8. श्वासोच्छ्वास वर्गणा - श्वासोश्वास के लिए उपयोगी पुद्गल परमाणुओं का समूह।

ये अष्ट वर्गणाएँ स्थूल और सूक्ष्म दो प्रकार की होती है। सूक्ष्म वर्गणा चार स्पर्शीय परमाणु वाली एवं इतनी सूक्ष्म होती है कि इस पुद्गल परमाणु का कोई विभाग नहीं कर सकता अतः अविभाजित पुद्गल परमाणु को ही सूक्ष्म वर्गणा कहा जाता है। सूक्ष्म वर्गणा में शीत-उष्ण, स्निग्ध-रूक्ष ऐसे स्पर्श पुद्गल के चार गुण रहते हैं।

स्थूल वर्गणा में स्पर्श पुद्गल के आठों गुण शीत-उष्ण, स्निग्ध-रुक्ष, गुरु-लघु, मृदु और कठोर विद्यमान रहते हैं। सूक्ष्म वर्गणा के परमाणु जब स्कन्ध रूप में परिणत होते हैं तब वे भी अष्ट स्पर्शी बन जाते हैं।

यहाँ वर्गणा सिद्धान्त की चर्चा करने का मकसद यह है कि वर्गणा और मुद्रा में परस्पर सम्बन्ध है।

प्रत्येक जीव अपने-अपने योग्य वर्गणाओं को आवश्यकता के अनुसार ग्रहण करता रहता है। जिस समय हम पुद्गल परमाणु के स्कन्ध रूप वर्गणा को ग्रहण करते हैं उस समय हमारे भावों के अनुरूप मुद्रा निर्मित होती है जिसे चर्मचक्षुओं से प्रत्यक्ष देख पाना संभव नहीं है। वह भावभंगिमा अत्यन्त सूक्ष्म होती है। विशेषता यह है कि वर्गणाओं के ग्रहणकाल में मनोदैहिक आकृति जिस

तरह की होती है उनका स्वरूप भी तदाकार हो जाता है। इस तरह वर्गणाओं का मुद्रा के साथ संयोगजन्य सम्बन्ध है। जैसे व्यक्ति वातावरण से प्रभावित होता है वैसे ही व्यक्ति के स्नायु तंत्र, ग्रंथि तंत्र मुद्रा से प्रभावित होते हैं।

वर्गणा और मुद्रा के पारस्परिक सम्बन्ध की दूसरी विशेषता यह है कि पुद्गल परमाणुओं का समूह अर्थात वर्गणाएँ जिस आकृति (मुद्रा) के रूप में प्रवेश करती है, निर्धारित अवधि तक उसी आकार में स्थिर रहते हुए अपना कार्य करती हैं। तदनन्तर तदाकार आकृतियाँ बनाकर शरीर से बाहर निकलती हैं। उन आकृतियों से न केवल वातावरण प्रभावित होता है अपितु व्यक्ति का अन्त:स्थल भी प्रभावित होता है।

इस अन्तिम चर्चा से बोध होता है कि जब अचेतन परमाणु चेतन मन (सूक्ष्म मुद्रा) से प्रभावित हो सकते हैं और अचेतन परमाणुओं का चेतन मन पर प्रभाव पड़ता है तब जीवन विकास के इच्छुक साधकों को सदैव अशुभ से शुभ और शुभ से शुद्ध भावधारा में सुस्थिर रहने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि शुभाशुभ विचारों के अनुसार ही आभामण्डल निर्मित होता है।

देवी-देवता और मुद्रा

आदियुग से ही मुद्राओं का महत्त्व देखा जाता है। रचनाकारों ने मुद्रा शब्द को परिभाषित करते हुए कहा है कि जो देवताओं को प्रसन्न करती है, दुष्टों का शमन करती है और पापों का नाश करती है वह मुद्रा है।

मुद्रा का अभिप्राय देवता से निकटता का सम्बन्ध स्थापित करना है। मुद् मोदने धातु से निष्पन्न मुद्रा शब्द देवी-देवता को तुष्ट करने के अर्थ में ही प्रयुक्त है। जैन-जैनेतर ग्रन्थों में देवता को प्रसन्न करने एवं असुर देवों की शक्तियों को शमित करने से सम्बन्धित अनेक मुद्राएँ प्राप्त होती हैं। इससे मुद्रा के शाब्दिक एवं सांकेतिक अर्थ की पूर्ण रूप से पुष्टि हो जाती है।

प्राचीन युग में किसी भी देवी-देवताओं की आराधना करने से पूर्व उनका आह्वान (नामोच्चारण पूर्वक आमन्त्रण) करके, उसे अपनी प्रिय मुद्रा दिखायी जाती थी। उसके पश्चात ही जाप-पूजा आदि अनुष्ठान प्रारम्भ किये जाते थे। विद्यादेवियाँ, दिशापालक देवता, क्षेत्रपाल देवता, चौसठ योगिनियाँ आदि की अपनी भिन्न-भिन्न मुद्राएँ हैं। प्राचीन प्रतिष्ठाविधियों एवं कर्मकाण्ड प्रधान ग्रन्थों में समस्त मुद्राएँ आज भी सुरक्षित है।

इस वर्णन से सिद्ध होता है कि दिव्य शक्तियों से परिवेष्टित देवी-देवताओं की अपनी-अपनी स्वतंत्र मुद्राएँ होती है। मुद्राओं के संकेत से उस दिव्य शक्ति से संपर्क स्थापित किया जा सकता है। जैसे मंत्रोच्चारण के ध्वनि संकेतों से देवता आदि का आह्वान किया जाता है वैसे ही प्रसंगानुसार देवी-देवता को उनकी अपनी प्रिय मुद्रा दिखाकर आमंत्रित किया जाता है।

जैसे व्यक्ति की पहचान नाम से होती है वैसे ही देवताओं के गोपनीय सांकेतिक शब्द (कोडवर्ड) होते हैं। सेना में सांकेतिक शब्दों से एक-दूसरे को गोपनीय सूचनाएँ संप्रेषित की जाती है, उन्हें इसी के माध्यम से किसी विशिष्ट मोर्चे पर भेजना-बुलाना आदि किया जाता है। उसी तरह देवताओं के आह्वान के लिए मंत्र की सांकेतिक ध्वनियों से स्मरण किया जाता है, मुद्रा प्रयोग की सांकेतिक भाषा से उन्हें आमन्त्रित किया जाता है। मंत्र एवं मुद्रा द्वारा उस विशिष्ट तत्त्व तक सूचनाएँ संप्रेषित की जाती है।[18]

समाहारत: मुद्राओं से केवल शरीर में ही परिवर्तन नहीं होता, अपितु एक सौम्यता भरे वातावरण का निर्माण भी होता है जिससे दिव्य शक्तियाँ बिना किसी व्यवधान के अवतरित हो सकती है। इस विवरण से यह भी स्पष्ट होता है कि मुद्रा देवता का सूक्ष्म स्वरूप है, वह देवों की अत्यन्त प्रिय वस्तु है और उनका इष्ट तत्त्व है।

मुद्रा योग के लाभ

मानव देह कुदरत का आश्चर्यजनक और रहस्यपूर्ण महायंत्र (मशीन) है। मुद्राएँ इस महत्त्वपूर्ण मशीन को नियंत्रण करने में स्वीच की भूमिका अदा करती है। मुद्रा रूपी स्विच से मानव शरीर में मानसिक, बौद्धिक, तात्विक एवं शारीरिक परिवर्तन बिना किसी सहयोग के सरलता से किया जा सकता है। यही मुद्रा विज्ञान की विशेषता है। इसमें किसी प्रकार के पूर्व प्रबन्ध की आवश्यकता नहीं होती, अपितु स्वेच्छा से किसी भी स्थिति में इनका प्रयोग कर सकते हैं।

मुद्रा शक्ति के कुछ रूप निम्न रूप से द्रष्टव्य हैं-

1. मुद्रा के द्वारा मानव देह में तीव्रता से तात्त्विक प्रत्यावर्तन, विघटन एवं परिवर्तन हो सकता है।
2. कुछ मुद्राएँ आवश्यक होने पर तत्परता से अपना प्रभाव दिखाने का

सामर्थ्य रखती है। यदि इस तरह की मुद्राओं का निरन्तर अभ्यास किया जाये तो स्थायी लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

3. मुद्राएँ मानव की सूक्ष्म शक्तियों को जगाने का अद्‌भुत सामर्थ्य रखती है। इनके द्वारा प्रसुप्त ज्ञान ग्रन्थियों एवं सुप्त स्नायु गुच्छों (ग्लैंड्स) को जागृत किया जा सकता है।
4. इस रहस्यमय मुद्रा विज्ञान के द्वारा धर्म और विज्ञान के सत्य का भी लोगों को ज्ञान करवाया जा सकता है जिससे मानव जगत का सर्वतोमुखी विकास हो सकता है।
5. मुद्रा विज्ञान योग विज्ञान का अतिसूक्ष्म अंग है अत: इस योग साधना के द्वारा लौकिक-लोकोत्तर समस्त प्रकार की सिद्धियाँ हासिल की जा सकती है।
6. मुद्राएँ शरीर की नियन्त्रक होती हैं अत: इनसे शरीर के विभिन्न तत्त्व एवं अवयव नियन्त्रित रहते हैं।
7. मुद्रा, शरीर के विभिन्न चक्रों को जागृत कर सम्पूर्ण स्नायुमण्डल को प्रभावित करते हुए तत्त्वों को संतुलित रखती है जिससे शरीर स्वस्थ रहता है।

इस प्रकार मुद्रा योग की साधना समग्र रूप से अनुकरणीय है।

मुद्रा योग का रहस्य

मुद्राएँ अनन्त हैं, क्योंकि हाथ की अंगुलियों की आकृति विशेष के द्वारा मुद्रा प्रतिष्ठित होती है और हाथ की अंगुलियों की विशेष तोड़-मरोड़ द्वारा जो आकृतियाँ बनती है उनके द्वारा विभिन्न मुद्राएँ बन जाती हैं।

प्राचीन ऋषियों ने संसार, प्रकृति, आत्मा, मोक्ष आदि के रहस्यपूर्ण ज्ञान के साथ-साथ मानव शरीर के रहस्यों पर भी अनुसंधान किया। उन्होंने मानव शरीर को सम्पूर्ण प्रकृति की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कृति के रूप में सिद्ध किया है। मानव देह की संरचना का सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर सकल ब्रह्माण्ड की विचित्रता दृष्टिगत हो जाती है। यह ध्यातव्य है कि प्राचीन भारतीय अनुसंधान कर्त्ताओं ने मानव देह को जितना पहचाना उतना आधुनिक विज्ञान अनुसंधान नहीं कर पाया है, फिर भी तत्त्व योग के अनुसार मुद्रा विज्ञान के द्वारा मानव शरीर के सम्बन्ध में बहुत कुछ जाना जा सकता है।

प्राचीन शोधकर्त्ताओं ने मानव शरीर के सम्बन्ध में जो अनगिनत अनुसन्धान किए हैं उनमें बहुत से नाम गिनाये जा सकते हैं जैसे तुरीय विज्ञान, वायु विज्ञान, ब्रह्म विद्या, शब्द विज्ञान, प्राण विनिमय विद्या, पराध्यान साधना तथा मुद्रा विज्ञान आदि। इनमें से समस्त विद्याएँ अपने आप में सम्पूर्ण रूप से मानव मन को विस्मित कर देने की शक्ति प्रदर्शित कर सकती हैं तब प्रमाणित होता है कि मुद्राएँ स्वयं में आश्यर्चचकित रहस्य है।

मुद्राओं में वह ताकत, सामर्थ्य एवं ओज है जिससे शरीरस्थ तत्त्वों को सरलता से घटाया-बढ़ाया जा सकता है और सम भी किया जा सकता है। पंच तत्त्वों के संतुलन में ही आनन्द है और उनकी न्यूनाधिकता में उपद्रव और रोग है।

मुद्रा प्रयोग के द्वारा तत्त्वों को घटा-बढ़ाकर और सम करके मानव जीवन की बहुत सी झंझटों एवं उपद्रवों को शान्त किया जा सकता है, तत्त्वों की संतुलित स्थिति में शरीर, मनो मस्तिष्क और आत्मा का विकास भी सहज सम्भव है, यही मुद्रायोग का परम रहस्य है।

मुद्रा एक सूक्ष्म यौगिक क्रिया है इसके द्वारा आन्तरिक और बाह्य प्रकृति में अद्‌भुत परिवर्तन कर सकते हैं। मुद्राओं का प्रभाव अपने आप होता है। मुद्राओं के द्वारा शरीर के विभिन्न स्नायुगुच्छों (ग्लैंड्स) पर भी आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। योग साधना के बल पर यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि किस मुद्रा को किस परिस्थिति में करने पर कौन से स्नायुगुच्छ या ग्लैंड्स का कार्य सुचारू रूप से हो सकेगा? इस तरह के रहस्यमय विषय भी यौगिक क्रियाओं से बोधगम्य हो जाते हैं।

आज परमाणु परीक्षण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार से वातावरण को प्रभावित कर रहा है। जब बाह्य प्रकृति में प्रदूषण फैलता है तब आन्तरिक प्रकृति भी निश्चित ही दूषित हो जाती है। यद्यपि आधुनिक विज्ञान काफी प्रगति पर है किन्तु इस गम्भीर समस्या का हल केवल भारतीय योग विज्ञान के हाथ में है। इस योग विज्ञान में ऐसी विधियाँ उपस्थित हैं जिनके द्वारा प्रत्येक मानव का कायाकल्प ही बदला जा सकता है।

वेद के अण्डपिण्ड सिद्धान्त के अनुसार मानव शरीर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की एक ईकाई है अत: सम्पूर्ण प्रकृति के गुण मानव में देखे जा सकते हैं। जिस

प्रकार किसी तत्त्व के सभी गुणधर्म उसके सूक्ष्मतम परमाणु में पाये जाते हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के सभी गुण मानव शरीर में हैं, किन्तु उनका साक्षात्कार मुद्रा योग जैसी साधनाओं द्वारा ही सम्भव है।

हाथों में पाँच ही अंगुलियाँ क्यों?

यह बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न है कि साधारण मानव के हाथ में पाँच ही अंगुलियों क्यों है? कम या अधिक क्यों नहीं? कोई कह सकता है कि किसी-किसी के छः भी होती है, किन्तु वह छठीं अंगुली तो बिल्कुल बेकार होती है।

इसके समाधान में कहा जा सकता है कि इस दुनियाँ में पांच तत्त्व, संगीत के सात स्वर, इन्द्रधनुष के सात रंग, योग के सात चक्र, मनुष्य के शरीरस्थ सात कोष, सूर्य के सात घोड़े, अग्नि की सात जिह्वायें आदि अनेकों बातें भारतीय शास्त्र में रहस्यपूर्ण हैं। इसी प्रकार पाँच अंगुलियों का भी अपना रहस्य है। विद्वानों के अनुसार शरीरस्थ पाँच तत्त्वों का नियोजन पाँच अंगुलियों के माध्यम से होता है।

हस्त मुद्रा का रहस्य विज्ञान

मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अनुसार शरीर की जितनी भी आकृतियाँ निर्मित होती हैं वह मुद्रा कहलाती है। दूसरे शब्दों में हमारी सहज प्रवृत्तियों में सम्पूर्ण शरीर गतिशील रहता है। उस समय हाथ, पाँव, आँख, मुख आदि प्रत्येक अंग-उपांगों से मुद्राएँ (हाव-भाव रूप आकृतियाँ) बनती-मिटती रहती है। इससे निर्णीत होता है कि मुद्राएँ शरीरस्थ सभी अवयवों से सम्बन्ध रखती है अथवा किसी भी अंग-उपांग से बनायी जा सकती है। फिर भी प्रश्न उठता है कि हस्त मुद्राओं का प्रचार, प्रयोग एवं प्रसिद्धि सर्वाधिक क्यों?

इस सम्बन्ध में सापेक्ष दृष्टि से विचार करें तो कई रहस्य स्मृति पटल पर उभर आते हैं। सबसे पहला तो यह है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पांच तत्त्वों के संयोग से निर्मित है। आधुनिक रसायन विज्ञान ने यद्यपि इन तत्त्वों को 106 से भी अधिक तत्त्वों में विभाजित कर दिया है, किन्तु मुख्य रूप से ये तत्त्व पाँच ही है– अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी और जल। पृथ्वी आदि पाँचों ब्रह्माण्ड की ईकाई होने से मानव शरीर भी पंच तत्त्वों से ही बना हुआ है। जब पाँच तत्त्वों में विकृति आती है तब विश्व प्रलय, अतिवृष्टि, भूकम्प आदि उपद्रवों से

आक्रान्त हो जाता है और मानव देह रोगों से घिर जाता है जबकि मुद्रा योग के द्वारा पंच तत्त्वों को संतुलित रखते हुए चराचर विश्व को स्वस्थ रखा जा सकता है।

दूसरा तथ्य यह है कि हाथ की दसों अंगुलियों में पंच तत्त्वों के प्रतिनिधित्व की क्षमता है। मुद्रा विज्ञान के अनुसार प्रत्येक अंगुली से अलग-अलग प्रकार का विद्युत प्रवाह निसृत होता है। उत्कृष्ट योग साधना के द्वारा विद्युत प्रवाह को बढ़ाया भी जा सकता है और उसके अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ प्रभाव भी देखे जा सकते हैं।

अंगुलियाँ ऊर्जा का नियमित स्रोत होने से एन्टीना का कार्य करती हैं। इस तरह हस्त मुद्राओं के माध्यम से अंगुलियों को मिलाने, मरोड़ने, दबाने और कुछ समय तक आकृति बनाये रखने से तत्त्वों में परिवर्तन होता है।

1. नियमत: किसी भी अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाने पर बढ़ा हुआ तत्त्व संतुलित हो जाता है।
2. अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के मूल भाग से लगाने पर शरीर में उस तत्त्व की अभिवृद्धि होती है।
3. किसी भी अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूलभाग (निचले हिस्से) पर रखने से उस अंगुली का तत्त्व घटने लगता है। इस तरह अंगुलियों के द्वारा शरीर में पंच तत्त्व को घटाने-बढ़ाने का साधारण नियम है।

इस प्रकार विभिन्न मुद्राओं के द्वारा शारीरिक तत्त्वों को घटाया-बढ़ाया जा सकता है तथा शरीर सन्तुलन के साथ-साथ मन, वाणी एवं चेतना को भी स्वस्थता का बाना पहनाया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की स्वस्थता ही वैश्विक शान्ति का मूल आधार है। उक्त वर्णन के आधार पर अनुभव कर सकते हैं कि हाथों से बनाई गई मुद्राएँ कितनी रहस्यमयी हो सकती है।

शरीर शास्त्रियों के अनुसार शरीर के सक्रिय अंगों में हाथ प्रमुख है। हथेली में एक विशेष प्रकार की प्राण ऊर्जा अथवा शक्ति का प्रवाह निरन्तर होता रहता है इसी कारण शरीर के किसी भी भाग में पीड़ा या अस्वस्थता होने पर हाथ सहज ही वहाँ पहुँच जाता है। अंगुलियों में संवेदनशीलता भी अधिक होती है। इसका साक्षात प्रमाण यह है कि नाड़ी शोधन अंगुलियों से ही किया जाता है इससे मस्तिष्क में नब्ज की कार्यविधि का संदेश शीघ्र पहुँचता है। • रेकी

चिकित्सा में हथेली का ही उपयोग होता है। • रत्न चिकित्सा में विभिन्न प्रकार के नगीने अंगूठी के द्वारा अंगुलियों में ही पहने जाते हैं। • एक्युप्रेशर चिकित्सा के अनुसार सम्पूर्ण शरीर के संवेदन बिन्दु, हथेली में होते हैं। • सुजोक बायल मेरेडियन के सिद्धान्तानुसार अंगुलियों से ही शरीर के विभिन्न अंगों में प्राण ऊर्जा के प्रवाह को नियन्त्रित और संतुलित किया जा सकता है। • हस्त रेखा में पारंगत व्यक्ति हथेली देखकर ही किसी की त्रैकालिक घटनाओं को बतला सकता है। • शीतकाल में गर्मी का ताप लेते समय हथेलियों को ही सामने करते हैं और उनके गर्म होते ही समग्र शरीर में उष्मा का संचार हो जाता है।

भारतीय परम्परा के अनुसार हाथ में तर्पण तीर्थों का विशेष स्थान माना गया है। अंग के अग्रभाग को देवतीर्थ, अंगूठा और तर्जनी के बीच के स्थान को पितृ तीर्थ, कनिष्ठिका अंगुली के मूल से दस सेन्टीमीटर नीचे के भाग को कायतीर्थ, अनामिका और मध्यमा के मूल से दस सेंटीमीटर नीचे (हथेली के मध्य भाग) को अन्ति तीर्थ तथा मणिबन्ध से दस सेंटीमीटर ऊपर (अंगुष्ठ के मूल भाग) को ब्रह्मतीर्थ कहा गया है। अधिकांश विद्वान नित्य सन्ध्या के उपरान्त देव, ऋषि, पितृ आदि तर्पण नियमित रूप से किया करते हैं। यहाँ यह भी एक मननीय विषय है कि तर्पण किस समय, किस प्रकार, किस स्थिति में, किन वस्तुओं के साथ करना चाहिए। इसी के साथ तर्पण क्रिया में हाथ और शरीर की मुद्राएँ किस तरह होनी चाहिए?

भारतीय सनातन धर्म में तर्पण, मार्जन, न्यास और मुद्राएँ आदि कई प्रकार की सूक्ष्म विधियाँ प्रचलित हैं। इस विषय में वैदिक ऋषियों ने गहरे अनुसंधान करने के पश्चात ही उन्हें साधकों के सामने प्रस्तुत किया।

इस वर्णन से निर्विवाद सिद्ध होता है कि हाथ के पृथक्-पृथक् भागों से भिन्न-भिन्न प्रकार का ऊर्जा प्रवाह निःसृत होता है।

मुद्रा विज्ञान के अनुसार भी यह स्पष्ट किया गया है कि हाथ की प्रत्येक अंगुलियों और हथेली के विभिन्न भागों से अलग-अलग प्रकार का विद्युत प्रवाह बहता है। इस तथ्य को भलीभाँति जानने के बाद ही मुद्रा प्रणेताओं ने भोजन करने, यज्ञ करने, उपासना करने, तिलक करने, आशीर्वाद या श्रापादि देने की भिन्न-भिन्न मुद्राएँ प्ररूपित की। जैसे शरीर को निर्मल बनाये रखने के लिए अपान मुद्रा (अंगूठा, मध्यमा एवं तर्जनी का संयोग) से भोजन करना चाहिए। शरीर की नष्ट

हुई प्राण शक्ति को जागृत करने के लिए प्राण मुद्रा (अंगूठा, अनामिका एवं कनिष्ठिका का संयोग) से भोजन करना चाहिए। रक्तचाप को ठीक करने के लिए व्यान मुद्रा (अंगूठा, तर्जनी एवं मध्यमा का संयोग) से भोजन करना चाहिए। इससे सिद्ध होता है कि प्राचीन योगियों ने सर्वसाधारण के लिए अच्छे स्वास्थ्य की कामना से धर्म की विभिन्न विधियों का प्रचलन किया था।

किसी व्यक्ति की आँखे स्थिर हो जाये तो प्राण मुद्रा करनी चाहिए, उससे आँखे पुन: संचालित हो जाती है। प्राण मुद्रा के अभ्यास द्वारा आँखों के विभिन्न रोग दूर किये जा सकते हैं। इसी प्रकार गर्दन की नसें अकड़ जाये तो हाथ की कलाई को विशेष प्रकार से घुमाने पर अकड़ी हुई नसें ठीक हो जाती है। कामजयी मुद्रा के द्वारा उत्पन्न कामप्रवृत्ति को दबाया जा सकता है और इसी मुद्रा के दीर्घ अभ्यास के द्वारा वासना पर नियंत्रण रखा जा सकता है।[19]

मुद्राओं का प्रभाव स्थूल जगत पर भी साक्षात देखा जाता है जैसे प्रात:काल आँख खुलते ही हथेलियों को देखकर उन्हें मुख मंडल पर फेरना चाहिए, इससे व्यक्ति भाग्यशाली बनता है ऐसा ऋषि मुनियों ने कहा है।

संत तुलसीदास ने हाथ की अंगुलियों की शक्ति के सम्बन्ध में कहा है कि यदि सीताफल के फूल को तर्जनी अंगुली दिखाई जाये तो फूल मृत हो जाता है और बेल फल से रहित हो जाती है।

लाजवन्ती (छुईमुई) का पौधा अत्यन्त कोमल होता है उसका स्पर्श करने से वह तत्काल मुरझा जाता है।

भारतीय संस्कृति में हर किसी से हाथ मिलाने का भी निषेध है क्योंकि हाथ से नि:सृत अच्छी-बुरी सूक्ष्म तरंगों का प्रवाह एक-दूसरे व्यक्ति पर शुभ-अशुभ प्रभाव डालता है। इसमें लाभ की अपेक्षा हानि की सम्भावना अधिक रहती है।

दीक्षा, प्रतिष्ठा, व्रत स्वीकार, पदारोहण आदि मुख्य प्रसंगों पर व्यक्ति विशेष या प्रतिमा विशेष को मुद्रापूर्वक ही अभिमंत्रित किया जाता है जिससे चेतन-अचेतन द्रव्य में अद्भुत शक्तियों का आविर्भाव होता है।

इस प्रकार नि:सन्देह कह सकते हैं कि हाथ, हथेली एवं अंगुलियों का हमारी जीवन शैली से सीधा सम्बन्ध है तथा हस्त मुद्रायें शरीरस्थ चेतना के शक्ति केन्द्रों (षट् यौगिक चक्रों) में रिमोट कन्ट्रोल के समान कार्य करती हैं।

संदर्भ सूची

1. *हस्त पताका मुद्राख्या, कटको मुष्टिरित्यपि।*
   कर्तरी मुख शंखश्च, शुकतुण्ड कपित्थकः ।।
   हंस पक्षश्च शिखरोपि, हंसस्य पुनरंजलि।
   अर्धचन्द्रश्च मुकटो, भ्रमरः शुचिकामुखः ।।
   पल्लव रिक्त पताकाश्च, मृगशीर्षः हृदयस्तथा।
   पुनः सर्पशिर संज्ञो, वर्धमानक इत्यपि ।।
   अराल ऊर्णनाभश्च, मुकुला कटकामुख।
   चतुर्विंशतिरित्यैव, कर शास्त्र सभ्यताः ।।

   संगीत रत्नाकार, भा. 4, अध्याय 7

2. *मुद्रा चतुर्विधा काय, करवाक्चित्त भेदतः।*
   तत्र पूर्णेन रूपेण, खेचरीमेव वर्णये ।।

   तन्त्रालोक, 32/9

   अंगुली न्यास भेदेन, करजा बहुमार्गगा।
   सर्वावस्था स्वेक रूपा, वृत्तिर्मुद्रा च कायिकी।
   मन्त्रतन्मयता मुद्रा, विलापाख्या प्रकीर्तिता।
   ध्येयतन्मयता मुद्रा, मानसी परिकीर्तिता ।।

   तन्त्रालोक, 32/9 की टीका

3. *मनोजा गुरु वक्त्रस्था, वाग्भवा मन्त्र सम्भवा।*
   देहोद्भवाङ्ग विक्षेपै, मुद्रेयं त्रिविधा स्मृता ।।

   स्वच्छन्दतन्त्र, भा.1, 2/102 की टीका

4. *घेरण्ड संहिता, 3/1-3 की व्याख्या*
5. *घेरण्ड संहिता, 3/4-5 की व्याख्या*
6. *मालिनी विजयोत्तर तन्त्र, संपा. मधुसूदन कौल, 7/1*
7. *मोचयन्ति महाघोरात्संसार मकराकरात्।*
   द्रावयन्ति पशोः पाशांस्तेन मुद्रा हि शक्तयः ।।

   तन्त्रालोक, भा. 7-32/50 की व्याख्या

8. *मुद्रा मोचयते पाश, जालतोऽशेषात्।*

कायीयान्पुर्यष्टक संस्कारान्मुद्रावयेत्तथा मन्त्रम् ।।
योगं क्रियां च चर्यां, मुद्रयति तदेकरूपतया ।।

तन्त्रालोक, भा. 7 32/3 की व्याख्या

9. मालिनीविजय वार्तिक, संपा. मधुसूदन कौल, 2/129-40
10. छान्दोग्योपनिषद्, 8/6/6
11. सशैलवन धात्रीणां, यथाधारोऽहिनायकः ।
सर्वेषांयोगतंत्राणां, तथाधारोहि कुण्डली ।।

हठयोग प्रदीपिका, 3/1

12. घेरण्डसंहिता, 3/50
13. प्रेक्षाध्यानः यौगिक क्रियाएँ, पृ. 8
14. हकारेण तु सूर्यः स्यात्, ठकारेणेन्दुरुच्यते ।
सूर्याचन्द्रमनसोरैक्यं, हठ इत्यभिधीयते ।।

योगशिखोपनिषत्, 1/133

15. हठयोग प्रदीपिका, ज्योत्स्ना टीका 1/2
16. मेरोर्वामे स्थिता नाड़ी, इड़ा चन्द्रमृता शिवे ।
दक्षिणे सूर्यसंयुक्ता, पिंगला नाम नामतः ।।

षट्चक्र विवृतिः, पृ. 78

17. शोधनं दृढ़ता चैव, स्थैर्यं च लाघवम् ।
प्रत्यक्षं निर्लिप्तं च, घटस्थ सप्त साधनम् ।।
षट्कर्मणां शोधनं च, आसनेनवेददृढ़म् ।
मुद्रया स्थिरता चैव, प्रत्याहारेण धीरति ।।
प्राणायामाल्लाघवं च, ध्यानात्प्रक्षमात्मनि ।
समाधिना च निर्लिप्तं, मुक्तिरेव न संशयः ।।

घेरण्ड संहिता, 1/9-12

18. प्रेक्षाध्यानः यौगिक क्रियाएँ, पृ. 18-20
19. पराविद्या मुद्रा विज्ञान, पृ. 24-25

●

अध्याय-3

मुद्रा योग का ऐतिहासिक अनुसन्धान

भारतीय संस्कृति में मुद्राओं की अवधारणा आदिम युग से ही प्रवर्तित रही है। जब भाषा विकसित नहीं हुई थी तब आदिम युगीन प्रजातियाँ संकेतों, चित्रों एवं अनुकृतियों के माध्यम से एक-दूसरे तक अपना संवाद संप्रेषित करती थीं। उस युग में केवल मानसिक भावों की अभिव्यक्ति के रूप में मुद्रा प्रयुक्त होती थी।

तद्युगीन मानव समाज अत्यन्त सरल-सहज तथा प्रकृति से सम्बन्ध रखता था। उनकी वैचारिक निर्मलता एवं मानसिक पवित्रता इस स्तर तक थी कि उनका हर व्यवहार कथनी और करनी की एकरूपता लिये होता था। वह जो कुछ कहता, समग्रता से उसका परिपालन भी करता था। उस युग के मानव में काल प्रभाव से क्रोध आदि कषाय अल्प होते थे अत: व्यवहार और आचरण भी तद्रूप होता था। आगम ग्रन्थों में "अप्प कोहे, अप्प माणे, अप्प माए, अप्प लोहे" शब्दों का प्रयोग उनकी आभ्यन्तर प्रकृति का दिग्दर्शन कराते हैं। व्यक्ति वैचारिक या भावनात्मक स्तर पर जितना यथार्थता के निकट होता है उतना ही शारीरिक स्वस्थता और आध्यात्मिक शक्तियों का अनुभव करता है।

कषायों की मंदता, वासनाओं की अल्पता, मन का संतुलन, व्यवहार की ऋजुता देह को बाह्य रोगों से एवं आत्मा को आभ्यन्तर विकारों से छुटकारा दिलाती है। उस युग का प्राणी ऋजु परिणामी एवं अल्पकषायी होने से निरोग रहता था और इस कारण बाह्य उपचार अथवा मुद्रायोग जैसे अध्यात्म उपचार की आवश्यकता महसूस नहीं होती थी। भाषा का समुचित विकास न हो पाने के कारण अपनी भावनाओं को शरीराकृति द्वारा सहज रूप से अभिव्यंजित कर देते थे। मुद्राओं का प्रारम्भिक स्वरूप इसी रूप में प्राप्त होता है, जो एक मात्र विचारों के संप्रेषण का माध्यम था।

जैन इतिहास के अनुसार इस अवसर्पिणी काल के तीसरे आरे

(कालखण्ड) के अन्त में भगवान आदिनाथ, जिनके ऋषभ, युगादिदेव, बाबा आदिम, नाभिपुत्र आदि अनेक नाम हैं इस पृथ्वी तल पर अवतरित हुए। पूर्वजन्मों की विशिष्ट साधनाओं के फलस्वरूप इस युग में एक शक्तिशाली योगी पुरुष के रूप में जीवन चर्या व्यतीत करने लगे। आगम साक्ष्यों के आधार पर ऋषभदेव के दो पुत्रियाँ थी ब्राह्मी और सुन्दरी। उन्होंने सर्वप्रथम अपनी पुत्री ब्राह्मी को लिपि सिखाई अर्थात भाषा ज्ञान सिखाया। वह लिपि (भाषा ज्ञान) ब्राह्मी लिपि के नाम से प्रसिद्ध हुई, तब से भाषा जनित समस्याएँ धीरे-धीरे समाप्त होने लगी।

भावाभिव्यक्ति के लिए भाषा का अपेक्षित सहयोग प्राप्त होने से पारस्परिक संवादों का क्षेत्र भी बढ़ गया। काल परिवर्तन के साथ-साथ अतिसंवाद कभी-कभार विवाद का रूप धारण करने लगा, समस्याएँ बढ़ने लगी, इच्छा पूरक कल्पवृक्ष का प्रभाव निस्तेज होते देख अनेक प्रकार की चिन्ताएँ उभरने लगी, आपसी सामंजस्य घटने लगा। इन स्थितियों ने सर्वाधिक रूप से शरीर एवं मन को प्रभावित किया, परिणामस्वरूप शारीरिक एवं मानसिक रोगों का प्रभुत्व बढ़ा और आध्यात्मिक शक्तियों का ह्रास होने लगा। उस स्थिति में हमारी जीवनीय शक्ति तथा चेतना शक्ति किस तरह सुरक्षित रह सकती है? अध्यात्म वेत्ताओं ने इस ओर प्रकृष्टता से ध्यान दिया। उन्होंने इसके उपाय स्वरूप अनेक यौगिक पद्धतियों का उत्सर्जन किया, जिनमें एक पद्धति मुद्रा योग से सम्बन्धित थी। कालक्रम से मुद्राओं की विभिन्न प्रणालियाँ विकसित हुई। उधर ऋषभदेव ने सुन्दरी को नृत्य आदि चौसठ कलाएँ सिखाई। नृत्य के द्वारा मुद्राओं की अभिव्यक्ति इस तरीके से की जाती है कि एक व्यक्ति का भाव दूसरे इच्छित व्यक्ति को समग्र रूप से हृदयंगम हो जाता है। मुद्रा के माध्यम से जो यथार्थ एक क्षण में अभिव्यक्त किया जा सकता है उसे शब्दों के माध्यम से व्यंजित किया जाये तो दीर्घ अवधि पूरी हो सकती है तथा वक्तव्य भी लम्बा बन सकता है। शरीरगत सूक्ष्म मुद्राएँ क्षण भर में समग्र भावों को अवतरित कर देती है। इस तरह पूर्व युग में नृत्यकला, चित्रकला आदि के माध्यम से भी मुद्राओं की अभिव्यक्ति की जाती थी, शरीर के हाव-भाव को प्रदर्शित किया जाता था। नृत्य भी विचार संप्रेषण का सुदृढ़ माध्यम था। अत: हम कह सकते हैं कि आदिम युग में मुद्राओं का एक रूप नृत्य था।

यह प्रमुख रूप से ध्यातव्य है कि भारतीय नृत्य केवल मनोरंजन या कला प्रदर्शन के लिए ही विकसित नहीं हुआ अपितु इसके पीछे एक मुख्य कारण, सुन्दर ढंग से भावों की अभिव्यक्ति करना भी रहा। देहांगों के संचालन से मुद्राओं का निर्माण होता है। नृत्यकला में हाथों एवं पैरों दोनों का संचालन होता है। जिस तरह हस्त संचालन से हस्त मुद्राएँ बनती है उसी तरह पाद संचालन से पैरों की मुद्राएँ बनती है। इन मुद्राओं में अपनी अभिव्यक्ति के संकेत होते हैं। पैर सम्बन्धी मुद्राओं के तीस प्रकार प्राप्त होते हैं जिनमें मुख्य दो हैं- भूमिचारी और आकाशचारी। भूमिचारी में पैरों को जमीन से स्पर्शित करवाते हुए विभिन्न मुद्राओं का प्रदर्शन किया जाता है। आकाशचारी में एक पैर पृथ्वी पर और दूसरा पैर आकाश में उठा हुआ रहता है। यह तो मुद्राओं के प्रारम्भिक स्वरूप एवं विकास की चर्चा हुई।

यदि हम प्रचलित परम्पराओं एवं उपलब्ध ग्रन्थों के आधार पर यह विचार करते हैं कि मुद्रायोग किस क्रम से विकसित हुआ? मुद्राओं के उद्भव में मुख्य कारण क्या रहे? कहाँ- कितनी मुद्राओं का उल्लेख किया गया है? तो मध्य युग से अब तक की इतिवृत्त जानकारी प्राप्त हो जाती है।

जहाँ तक तान्त्रिक एवं वैदिक परम्परा का सवाल है वहाँ उपलब्ध प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि मुद्रा कर्मकाण्ड के एक अंग के रूप में वैदिक काल से ही प्रतिष्ठित हो चुकी थी। वैदिक यज्ञों में मन्त्रोच्चारण के समय हाथों के विशिष्ट सन्निवेश के द्वारा उनके स्वर वर्णादि को सूचित किया जाता है। तान्त्रिक मुद्रा की अपेक्षा वैदिक मुद्रा की यह विशेषता है कि यह विशिष्ट ध्वनि की प्रतीक होती हैं जबकि तान्त्रिक मुद्राएँ विशिष्ट अर्थ अथवा यौगिक प्रक्रिया की प्रतिकृति होती है। ऋग्वैदिक मुद्राएँ केवल दाहिने हाथ से प्रदर्शित की जाती है। कुछ प्रमुख वैदिक मुद्राओं के नाम हैं– ह्रस्व मुद्रा, मूर्धन्य मुद्रा, घोष मुद्रा, दीर्घविसर्ग मुद्रा, उदात्त मुद्रा, उकार मुद्रा, अनुस्वार मुद्रा आदि। ये मुद्राएँ अपने-अपने नाम के अनुरूप विशिष्ट ध्वनि अथवा वर्णों को हस्ताकृति के द्वारा सूचित करती है जैसे कि उदात्त स्वर के लिए हाथ को ऊपर की ओर, अनुदात्त स्वर के लिए हाथ को नीचे की ओर, स्वरित स्वर के लिए हाथ को दायीं ओर एवं प्रचय के लिए बायीं ओर किया जाता है।

वैदिक परम्परा मान्य स्मार्त्तविधि में मुद्रा का प्रयोग तान्त्रिक मुद्रा की भाँति

विशिष्ट अंग-विन्यास के रूप में मिलता है। अभिनवगुप्त के अनुसार मुद्रा का प्रयोग साधक के द्वारा काम्य-कर्मों के अन्तर्गत कभी-कभी किया जाना चाहिए तथा यज्ञादि के अन्तर्गत मुद्रा का प्रयोग आरम्भ, मध्य एवं अन्त में किया जाना चाहिए। वैदिक लेखकों ने मुद्राओं में खेचरी मुद्रा को प्रधान एवं महत्त्वपूर्ण मुद्रा माना है। यह सकल रूप में त्रिशूलिनी, करंकिणी, क्रोधना, लेलिहा आदि मुद्राओं से संयुक्त होकर अनेक प्रकारों में प्रस्तुत की जाती है।

इसके अनन्तर परवर्ती ग्रन्थों में पृथक्-पृथक् प्रयोजनों को लेकर अनेक मुद्राओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं। कुछ मुद्राएँ स्वरूप आदि की अपेक्षा समान हैं तो कुछेक नाम आदि की अपेक्षा असमान हैं। यदि चर्चित मुद्राओं का गुरुगम पूर्वक अभ्यास किया जाए तो निर्विवादतः साधारण वेशभूषा में दिखाई देता व्यक्ति ब्रह्मज्ञानी हो सकता है, चरमज्ञान की अवस्था प्राप्त कर सकता है। वह देह में रहते हुए भी विदेही सुख, संसार में रहते हुए भी मोक्ष सुख, सम्बन्धों के बीच रहते हुए भी स्वतन्त्र आत्म सुख का आस्वादन कर सकता है।

मध्ययुग में यह वर्णन उपनिषदों एवं संहिताओं में देखने को मिलता है। घेरण्डसंहिता में पच्चीस मुद्राओं का निर्देश किया गया है। इसमें वर्णित मुद्राएँ हठयोग से सम्बन्ध रखती है तथा शरीर के प्रमुख अंगोपांगों से प्रयुक्त की जाती है। इन मुद्राओं का सम्बन्ध केवल हाथों से ही नहीं है, अपितु भिन्न-भिन्न अंगों से भी है। कहा जाता है कि इन मुद्राओं को विशिष्ट साधक या योगीजन ही साध सकते हैं साधारण पुरुष के लिए उपयोगी नहीं है, किन्तु यह भी हकीकत है कि एक साधारण पुरुष ही अपने सम्यक् पुरुषार्थ के बल पर असाधारण स्थिति का निर्माण करता है इसलिए कोई भी साधक इन मुद्राओं को साधने का प्रयत्न कर सकता है और करना भी चाहिए। गोरक्षसंहिता में पाँच मुद्राओं का वर्णन है। शिवसंहिता में मुद्राओं की दस संख्या बताते हुए उन्हें क्रमशः उत्तमोत्तम कहा है। इसी क्रम में हठयोग प्रदीपिका में दस मुद्राओं का विस्तृत विवेचन किया गया है।

अर्वाचीन युग की अपेक्षा विचार किया जाए तो इस युग में रोगोपचार एवं आत्मोपचार से संबंधित अनेक मुद्राएँ दृष्टिगत होती है। इन मुद्राओं के विषय में परम्परा भेद नहींवत देखा जाता है। सामान्य तौर पर मुद्राओं का सर्वप्रथम उल्लेख भरत के नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है। इस शास्त्र में मुद्राओं का प्रयोग विशिष्ट भावों को सम्प्रेषित करने के उद्देश्य से किया गया है, न कि किसी प्रयोजन विशेष को लेकर।

नाम साम्य की अपेक्षा देखा जाए तो ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र का नाम भी भरत था। संभवत: भरत का नाट्यशास्त्र उस भरत से सम्बन्धित हो। इसे यथार्थ मानने का एक कारण यह भी है कि वैदिक ग्रन्थों में बहुत सी जगह शिव के रूप में आदिनाथ, ऋषभदेव, आदिपुरुष जैसे नामों का उल्लेख हुआ है। दूसरा जैन संस्कृति और वैदिक संस्कृति समकालीन होने से भी पूर्वोक्त संभावना को यथार्थ माना जा सकता है।

तीसरा हेतु यह है कि भरत और सुन्दरी दोनों भाई-बहिन युगल रूप में उत्पन्न हुए थे, ऋषभदेव ने उस युग में सर्वप्रथम पुरुषों को बहत्तर एवं स्त्रियों को चौसठ कलाएं सिखायी। उसमें नृत्य-नाट्यादि कलाओं का भी समावेश है। भरत एवं सुन्दरी ज्येष्ठ पुत्र-पुत्री होने से यह शक्य है कि नाट्यादि कलाओं का सर्वप्रथम ज्ञान उन्हें दिया हो और उसी के फलस्वरूप भरत ने नाट्यशास्त्र का निर्माण किया हो। कुछ भी हो इतना निश्चित है कि आदिम युग में नाट्यादि के रूप में मुद्रा प्रयोग किया जाता था।

जहाँ तक सैद्धान्तिक दर्शनों का सवाल है वहाँ प्राय:कर सभी दर्शनों में मुद्राओं के महत्त्व को अपने-अपने तरीके से स्वीकार किया गया है। धर्म दर्शन के क्षेत्र में मुद्राओं को ज्ञान अथवा योग की निश्चित प्रणालियों की वाचिकाओं के रूप में मान्य किया है। हिन्दू-बौद्धादि दर्शनों में अपने-अपने सिद्धान्तों के अनुसार मुद्राओं का उपयोग किया जाता है। उत्तर शैव एवं दक्षिण शैव परम्परा में भी मुद्रा का अपना स्वरूप एवं महत्त्व स्वीकार किया गया है।

मनोविज्ञान की दृष्टि से मुद्रा प्रयोग का व्यापक स्वरूप परिलक्षित होता है। वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर कहा जाये तो जितने तरह की मन:स्थितियाँ बाह्य स्वरूप धारण करती हैं उतने प्रकार से शरीर की एवं उसके अवयवों की स्थितियाँ भिन्न-भिन्न हो जाती हैं। क्रोध के क्षणों में शरीर की जो आकृति होती है वह चिन्तन या प्रेम की स्थिति में नहीं होती। अध्ययन के पलों में जो देहाकृति होती है वह भाषण या लेखन के समय नहीं होती। एक ही भाव में धीर, अधीर, कोमल या कठोर व्यक्ति की मुद्रा में भी अन्तर होता है। अत: भावना के अनुसार देह की आकृति (चेष्टा) का परिवर्तित होना अत्यन्त स्वाभाविक है। दैहिक स्तर से ऊपर उठकर की जाने वाली मुद्रा साधना का और भी अधिक महत्त्व है।

विभिन्न मुद्राओं में अवस्थित योगी साधकों के अनेक चित्र, स्थापत्य आदि आज भी उपलब्ध हैं।

इस तरह दर्शन, विज्ञान, साधना, उपासनादि विविध पद्धतियों की अपेक्षा भी मुद्राओं का महत्त्व पूर्वकाल से रहा है।

जहाँ तक जैन परम्परा का प्रश्न है वहाँ श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार कुछ आगमों में नाट्य आदि के वर्णन अवश्य प्राप्त होते हैं जो मुद्रा के प्रारम्भिक स्वरूप के द्योतक हो सकते हैं। भगवतीसूत्र, ज्ञाताधर्मकथा आदि कुछ शास्त्रों में बद्धांजलि पूर्वक नमस्कार मुद्रा, वन्दन मुद्रा, प्रणिपात मुद्रा के नामोल्लेख स्पष्टत: उपलब्ध होते हैं। आचारांगसूत्र में भगवान महावीर की कठोर साधना का वर्णन करते हुए कहा गया है कि प्रभु अपनी दृष्टि को नासाग्र पर स्थिर कर, दोनों हाथों को सीधा करके घंटों तक खड़े-खड़े आत्मधारा में विहरण करते रहते थे। इस वर्णन में नासाग्रदृष्टि मुद्रा एवं जिन मुद्रा के स्पष्ट संकेत हैं। भगवान महावीर के सम्बन्ध में उत्कटासन मुद्रा का उल्लेख भी प्राप्त होता है।

यदि आगमिक टीका साहित्य का अवलोकन करते हैं तो आवश्यकसूत्र की निर्युक्ति, चूर्णि, टीका आदि में षड़ावश्यक (सामायिक, प्रतिक्रमण, वन्दन आदि) से सम्बन्धित वन्दन मुद्रा, योग मुद्रा, मुक्ताशुक्ति मुद्रा, जिन मुद्रा, वीरासन मुद्रा आदि का वर्णन कहीं नाम निर्देश मात्र तो कहीं स्वरूप के साथ प्राप्त होता है।

यदि आगमेतर साहित्य की अपेक्षा विचार किया जाए तो उपलब्ध ग्रन्थों के अनुसार सर्वप्रथम निर्वाणकलिका (वि.सं. 11वीं शती) में 63 मुद्राओं का स्वरूप उपलब्ध होता है। इसके अनन्तर नेमिचन्द्रसूरि कृत प्रवचनसारोद्धार (12-13वीं शती) में प्रभु दर्शन से सम्बन्धित तीन मुद्राओं का वर्णन देखा जाता है।

तदनन्तर तिलकाचार्यसामाचारी (13वीं शती) में 19 मुद्राओं का नामोल्लेख मिलता है जिनका निर्देश वासचूर्ण एवं अक्षत अभिमन्त्रण के सन्दर्भ में किया गया है। इसी क्रम में सुबोधासामाचारी (12वीं शती) के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न प्रयोजनों की अपेक्षा 16 मुद्राएँ कही गई हैं। इस सामाचारी में भी मुद्राओं का नामोल्लेख ही मात्र किया गया है।

तदनन्तर खरतरगच्छ सामाचारी का प्रतिपादक ग्रन्थ विधिमार्गप्रपा (14वीं

शती) में 77 मुद्राओं का विवेचन प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में मुद्राविधि नाम का एक स्वतन्त्र प्रकरण ही है। जैन परम्परा के प्राचीनतम अथवा अर्वाचीन ग्रन्थों की तुलना में सर्वाधिक मुद्राएँ विधि प्रपा में ही परिलक्षित होती है।

तत्पश्चात आचारदिनकर (15वीं शती) में स्वरूप वर्णन के साथ 42 मुद्राएँ उपलब्ध होती है। प्रत्येक मुद्रा का संक्षेप में प्रयोजन भी बताया गया है। तदनन्तर अर्वाचीन प्रतियों, कल्याणकलिका, प्रतिष्ठाकल्प आदि में वर्तमान प्रचलित मुद्राओं का विवेचन मिलता है तथा इन कृतियों में निर्दिष्ट मुद्राएँ प्राय: पूर्ववर्ती ग्रन्थों से ही उद्धृत की गई मालूम होती है।

विगत कुछ वर्षों से हस्त मुद्रा से सन्दर्भित पुस्तकें भी देखने-पढ़ने में आई है। उनमें उल्लिखित अनेक मुद्राओं का प्रामाणिक आधार प्राप्त नहीं हो पाया है। संभवतया यह वर्तमान युग के विद्वत् मनीषियों की नई खोज हो सकती है।

यहाँ ध्यातव्य है कि 15वीं शती तक के ग्रन्थों में निर्दिष्ट मुद्राएँ कर्मकाण्ड एवं उपासना प्रधान हैं, जबकि आधुनिक पुस्तकों में वर्णित मुद्राएँ विशेष तौर पर स्वास्थ्यवर्धक एवं मनस परिष्कार से सम्बन्धित ज्ञात होती है। यद्यपि इन मुद्राओं के माध्यम से बौद्धिक क्षमताएँ, धार्मिक एवं आध्यात्मिक भावनाएँ भी विकसित होती है किन्तु मुख्य ध्येय रोगों से छुटकारा पाना ही देखा जाता है।

जहाँ तक दिगम्बर परम्परा का सवाल है वहाँ पण्डित आशाधर कृत अनगारधर्मामृत में चतुर्विध मुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

यदि बौद्ध परम्परा के सन्दर्भ में कहा जाए तो यह निर्विवाद है कि इस धर्म संघ में हजारों मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। इनके मुख्य रूप से सप्त रत्न, अष्ट मंगल, अठारह कर्त्तव्य, बारह द्रव्य हाथ मिलन, म-म मडोस् आदि कई मुद्राएँ उपलब्ध होती है। यहाँ भगवान बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित 40 मुद्राएँ भी कही गई है तथा कर्मकाण्ड में उपयोगी गर्भधातु-वज्रधातु मण्डल की शताधिक मुद्राओं का उल्लेख है। कुछ मुद्राएँ भारत, थायलैण्ड, जापान, ऐसे भिन्न-भिन्न देशों में ही प्रचलित है तो कुछ हिन्दू एवं बौद्ध दोनों परम्पराओं में समान रूप से स्वीकारी गई है।

भगवान बुद्ध की 40 मुद्राओं का वर्णन संभवतया पारम्परिक हिन्दू अथवा बौद्ध महायान ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता है, लेकिन आधुनिक शोधकर्त्ताओं के अनुसार इन मुद्राओं की स्थापना राजा राम III के समय हुई। राम III ने भगवान

बुद्ध के जीवन का विशेष अध्ययन करते हुए मुख्य प्रयोगी इन 40 मुद्राओं का सम्मिलन उस युग में प्रचलित मुद्राओं के साथ किया। फिर इनमें से 33 मुद्राओं का चित्रण "राजक्रमानुसरण" (वेट फ्रा के केयो बैठक कमरा) में करवाया तथा शेष सात मुद्राओं को भगवान बुद्ध की बोधि प्राप्ति के सात सप्ताहों के सात दृश्यों से सम्बन्धित बताया गया। वे सात दृश्य निम्न हैं–

1. बोधि वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ मुद्रा 2. बोधि वृक्ष पर एकाग्र दृष्टि 3. उज्ज्वल आभामंडल के साथ ध्यानस्थ मुद्रा 4. रत्नगृह में अभिधम्म का चिंतन करने की मुद्रा 5. बरगद के वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ मुद्रा 6. नाग के आश्रय में म्युकलिन्दा वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ मुद्रा और 7. मिमुसोप्स वृक्ष के नीचे ध्यान मुद्रा।

इस प्रकार नि:सन्देह कहा जा सकता है कि मुद्रा की आवश्यकता प्रारम्भ काल से हर युग में रही है तथा विविध दृष्टिकोणों से सभी धर्म परम्पराओं ने योग साधना हेतु इसे प्रमुखता दी है।

●

अध्याय-4

जैन एवं इतर परम्परा में उपलब्ध मुद्राओं की सूची एवं तुलनात्मक अध्ययन

मुद्रा विज्ञान तत्त्व परिवर्तन की एक अपूर्व क्रिया है। यह पूर्णतया शरीर में परिव्याप्त विभिन्न तत्त्वों की स्थिति पर आधारित है इसलिए मुद्राएँ शरीर में तत्त्व परिवर्तन कर उन्हें संतुलित कर सकती हैं। तत्त्वों की स्थिरता, वृद्धि या ह्रास से स्वास्थ्य में परिवर्तन परिलक्षित होता है। यदि किसी भी अंगुली का अग्रभाग अंगूठे के अग्रभाग से जोड़ दिया जाये तो उससे सम्बन्धित तत्त्व स्थिर हो जाता है जैसे– अंगूठा अग्नि तत्त्व का, तर्जनी वायु तत्त्व का, मध्यमा आकाश तत्त्व का, अनामिका पृथ्वी तत्त्व का एवं कनिष्ठिका जल तत्त्व का प्रतीक है। इस प्रकार अंगूठे के स्पर्श से संबंधित अंगुली के तत्त्व जो शरीर में व्याप्त हैं, वे प्रभावित होते हैं। अंगूठे के अग्रभाग को किसी अंगुली के निचले हिस्से (मूल भाग) पर रखा जाये तो उससे सम्बन्धित तत्त्व की शरीर में वृद्धि होती है। यदि किसी अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे की जड़ (मूलभाग) से स्पर्शित करवाया जाये तो उस अंगुली से सम्बन्धित तत्त्व का शरीर में ह्रास होता है। इस प्रकार मुद्रा अद्‌भुत शक्तिशाली है।

मुद्रा अन्तर्भावों की अभिव्यक्ति है। हमारे भीतर जिस प्रकार के भाव उठते हैं उन्हें तत्क्षण दर्शाने हेतु शरीर की विभिन्न आकृतियाँ स्वत: निर्मित होने लगती है। हमारा अन्तर्जगत और बाह्यजगत एक दूसरे से इतना निकट है कि उन पर घटित होने वाली घटना बाहर से अन्दर प्रतिबिम्बित हो जाती है और अन्दर का प्रकम्पन बाहर की आकृति ले लेता है। अन्दर में उठने वाले आवेग प्रतिक्षण शरीर पर घटित होते हैं और शरीर पर घटने वाली घटना अन्दर के प्रकम्पनों को प्रभावित करती है इसीलिए हमारी मुद्रा में प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। उसे तेज गति वाला 'मुविंग केमरा' भी रिकॉर्ड नहीं कर सकता,

क्योंकि वह तो किसी भी तरंग को स्थूल अवस्था तक पहुंचने पर ही अंकित कर पाता है। फिल्म पर उभरती आकृति कई तस्वीरों का जोड़ है उसी प्रकार अन्दर से उठने वाले भावों के प्रकम्पनों का जोड़ एक विशिष्ट आकृति का निर्माण करता है। इसे बाह्य मुद्रा कह सकते हैं। बाह्य मुद्रा स्थूल होने से वह सहज पकड़ में आती है अत: इसके सहारे अन्तर यात्रा के लिए भी उतर सकते हैं।

क्रोध आवेग के समय हाथ की मुद्रा एक विशेष प्रकार का आकार ले लेती है किन्तु सामान्य अवस्था में वैसी ही मुद्रा का प्रयोग करें तो शरीर एवं मन पर कुछ तनाव प्रकट हो जाता है। इस प्रकार अन्तरंग भाव बाह्य को तथा बाह्य भाव अन्तरंग को प्रभावित करते हैं और उन भावों की अभिव्यक्ति मुद्रा के द्वारा होती है।

इसमें भी बाह्य मुद्रा के निर्माण से चित्त की एक विशेष स्थिति निर्मित हो जाती है उस स्थिति से भावना में प्रगाढ़ता आती है तथा भावना से प्रभावित चित्त अन्तर-लोक में प्रविष्ट हो जाता है, जैसे कि वीतराग मुद्रा, ज्ञान मुद्रा, ब्रह्म मुद्रा, महामुद्रा आदि चित्त को स्व स्वरूप में स्थिर करती हैं।

श्रीमद्भागवत गीता, कबीर साखी आदि में प्राप्त मुद्राओं से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों ने मनुष्य के हाथ एवं उसकी अंगुलियों का महत्त्व अच्छी तरह समझ लिया था। उन्होंने उसकी दिव्य शक्ति को पाने के लिए हाथ के उपयोग का निर्देश भी दिया, जैसे प्रात:काल आँख खुलते ही हथेली का दर्शन करना चाहिए, क्योंकि

कराग्रे वसते लक्ष्मी, कर मध्ये सरस्वती।
कर मूले स्थितो ब्रह्मा, प्रभाते कर दर्शनम्।।

इस सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि हाथ के दर्शन करने के पश्चात उन हाथों को मुख मंडल पर फेरने से व्यक्ति भाग्यशाली बनता है। यह क्रिया विधि वैज्ञानिक रहस्यों से युक्त है। यदि इसे नियमित रूप से किया जाए तो इसका प्रत्यक्ष प्रभाव शीघ्र ही अनुभूत होता है।

इस अध्याय में प्राच्य युग से लेकर अब तक प्रचलित एवं भिन्न-भिन्न परम्पराओं के ग्रन्थों में उपलब्ध मुद्राओं की नाम सूची प्रस्तुत करते हुए उनका तुलनात्मक अध्ययन करेंगे।

नाट्य परम्परा में प्रचलित मुद्राओं की सूची

1. भरत मुनि के नाट्यशास्त्र आदि में वर्णित मुद्राएँ

असंयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. पताका मुद्रा 2. त्रिपताका मुद्रा 3. कर्तरीमुख मुद्रा 4. अर्धचन्द्र मुद्रा 5. अराल मुद्रा 6. शुकतुण्ड मुद्रा 7. मुष्टि मुद्रा 8. शिखर मुद्रा 9. कपित्थ मुद्रा 10. कटकामुख मुद्रा 11. सूच्यास्य मुद्रा 12. पद्मकोश मुद्रा 13. सर्पशीर्ष मुद्रा 14. मृगशीर्ष मुद्रा 15. लांगुल मुद्रा 16. अलपद्म मुद्रा 17. चतुर मुद्रा 18. भ्रमर मुद्रा 19. हंसास्य मुद्रा 20. हंसपक्ष मुद्रा 21. सन्दंश मुद्रा 22. मुकुल मुद्रा 23. ऊर्णनाभ मुद्रा, 24, ताम्रचूड़ मुद्रा।

संयुक्त हस्त मुद्राएँ– 1. अंजलि मुद्रा 2. कपोत मुद्रा 3. कर्कट मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. खटका वर्धमान मुद्रा 6. उत्संग मुद्रा 7. निषेध मुद्रा 8. डोल मुद्रा 9. पुष्पपुट मुद्रा 10. मकर मुद्रा 11. गजदन्त मुद्रा 12. अवहित्त मुद्रा 13. वर्धमान मुद्रा।

नृतहस्त मुद्राएँ– 1. चतुरस्र मुद्रा 2. उद्वृत्त मुद्रा 3. तलमुख मुद्रा 4. स्वस्तिक मुद्रा 5. विप्रकीर्ण मुद्रा 6. अराल मुद्रा 7. खटका मुद्रा 8. आविद्धवक्र मुद्रा 9. सूचीमुख मुद्रा 10. रेचित मुद्रा 11. अर्धरेचिता मुद्रा 12. उत्तानवंचित मुद्रा 13. पल्लव मुद्रा 14. नितम्ब मुद्रा 15. केशबंध मुद्रा 16. लताहस्त मुद्रा 17. करिहस्त/गजहस्त मुद्रा 18. पक्षवंचित मुद्रा 19. पक्षप्रद्योत मुद्रा 20. गरूडपक्ष मुद्रा 21. दण्डपक्ष मुद्रा 22. ऊर्ध्वमण्डलिन् मुद्रा 23. पार्श्वमण्डलिन् मुद्रा, 24. उरोमण्डलिन् मुद्रा 25. मुष्टि स्वस्तिक मुद्रा 26. नलिनी पद्मकोश मुद्रा 27. अलपल्लव मुद्रा 28. उल्वण मुद्रा 29. ललित मुद्रा 30. वलित मुद्रा।[1]

2. अभिनय दर्पण में निरूपित अतिरिक्त मुद्राएँ

1. अर्धपताका मुद्रा 2. मयूरहस्त मुद्रा 3. चन्द्रकला मुद्रा 4. सिंहमुख मुद्रा 5. त्रिशूल मुद्रा 6. व्याघ्र मुद्रा 7. अर्धसूची मुद्रा 8. कटक मुद्रा 9. पल्लि मुद्रा 10. शिवलिंग मुद्रा 11. कर्तरी स्वस्तिक मुद्रा 12. शकट मुद्रा 13. शंख मुद्रा 14. चक्र मुद्रा 15. सम्पुट मुद्रा 16. पाश मुद्रा 17. कीलक मुद्रा 18. मत्स्य मुद्रा 19. वराह मुद्रा 20. गरूड़ मुद्रा 21. नागबन्ध मुद्रा 22. खट्वा मुद्रा 23.भेरूण्ड मुद्रा।[2]

3. भारतीय नाट्यकला में प्रयुक्त मुद्राएँ

1. अधोमुष्टि मुकुल मुद्रा 2. अजमुख मुद्रा 3. अंगारख मुद्रा 4. अराल-कटक मुख मुद्रा 5. अर्धमुख मुद्रा 6. अर्जुन मुद्रा 7. अशोक मुद्रा 8. वक्र मुद्रा 9. भीम मुद्रा 10. भिन्नांजली मुद्रा 11. ब्रह्म मुद्रा 12. ब्राह्मण मुद्रा 13. बृहस्पति मुद्रा 14. छग मुद्रा 15. चक्रवाक मुद्रा 16. चंपक मुद्रा 17. चन्द्र मुद्रा 18. चन्द्रमृग मुद्रा 19. गर्दभ मुद्रा 20. इन्द्र मुद्रा 21. कंदंजली मुद्रा 22. करकट मुद्रा 23. कर्तरी दण्ड मुद्रा, 24. कार्त्तवीर्य मुद्रा 25. कटक मुद्रा (प्रथम) 26. कटक मुद्रा (द्वितीय) 27. केतकी मुद्रा 28. केतु मुद्रा 29. खड्ग मुकुल मुद्रा 30. अर्घ मुद्रा 31. आश्चर्य मुद्रा 32. अश्वत्थ मुद्रा 33. भागीरथ मुद्रा 34. डमरू मुद्रा 35. दान मुद्रा 36. दिलीप मुद्रा 37. दीप मुद्रा 38. गंगा मुद्रा 39. हरिश्चन्द्र मुद्रा 40. कृष्णमृगे मुद्रा 41. क्रोध मुद्रा 42. खड्ग मुद्रा 43. क्षत्रिय मुद्रा 44. कूर्म मुद्रा 45. कुरूवक मुद्रा 46. कुबेर मुद्रा 47. लक्ष्मी मुद्रा 48. लीन कर्कट मुद्रा 49. लीनाल पद्म मुद्रा 50. मध्य पताका मुद्रा 51. मन्मय मुद्रा 52. नैऋति मुद्रा 53. निम्बसल मुद्रा 54. वरूण मुद्रा 55. वायु मुद्रा 56. व्हलो मुद्रा 57. व्याली मुद्रा 58. परदिष मुकुल मुद्रा 59. पारीजात मुद्रा 60. पार्वती मुद्रा 61. पाटली मुद्रा 62. पूग मुद्रा 63. पुन्नाग मुद्रा 64. राहु मुद्रा 65. रावण मुद्रा 66. संयम नायक मुद्रा 67. संकीर्ण मुद्रा 68. संकीर्ण मकर मुद्रा 69. सरस्वती मुद्रा 70. शैव्य मुद्रा 71. शम्भु मुद्रा 72. शनैश्चर मुद्रा 73. शमी मुद्रा 74. शुद्र मुद्रा 75. शुक्र ग्रह मुद्रा 76. सिंह मुद्रा 77. सिन्धुवर मुद्रा 78. स्त्री मुद्रा 79. सूर्य मुद्रा 80. तालपताका मुद्रा 81. तालसिंह मुद्रा 82. त्रिज्ञान मुद्रा 83. उद्वेष्टि तालपद्म मुद्रा 84. उलूक मुद्रा, 85. वैश्य मुद्रा 86. रसाल मुद्रा 87. रिषभ मुद्रा 88. सगर मुद्रा 89. सहदेव मुद्रा 90. सारस मुद्रा 91. सरयु मुद्रा 92. शशांक मुद्रा 93. शिबि मुद्रा 94. शिंशप मुद्रा 95. श्वान मुद्रा 96. भेरूण्ड मुद्रा।[3]

4. सम्बन्ध सूचक मुद्राएँ

1. ज्येष्ठ भ्रातृ मुद्रा 2. कनिष्ठ भ्रातृ मुद्रा 3. मातृ मुद्रा 4. ननंद मुद्रा 5. पितृ मुद्रा 6. सपत्नी मुद्रा 7. श्वश्री मुद्रा 8. श्वसुर मुद्रा 9. स्नुष् मुद्रा 10. भर्त्तार भ्रातृ मुद्रा 11. भर्त्तार मुद्रा 12. दम्पति मुद्रा।[4]

5. अवतार सम्बन्धी मुद्राएँ

1. बलरामावतार मुद्रा 2. कल्कावतार मुद्रा 3. कृष्णावतार मुद्रा 4. कूर्मावतार मुद्रा 5. मत्स्यावतार मुद्रा 6. नरसिंहावतार मुद्रा 7. परशुरामावतार मुद्रा 8. रघुरामावतार मुद्रा 9. वामनावतार मुद्रा।[5]

तुलना

सर्वप्रथम आदिम युग में नाट्य अभिनय को दर्शाने हेतु मुद्राओं का उद्भव हुआ। उस काल में जो मुद्राएँ प्रचलन में आई, वे लगभग भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में गुम्फित हैं। उसके पश्चात इसी ग्रन्थ का अनुकरण करते हुए विष्णुधर्मोत्तर पुराण, समरांगण सूत्रधार, नृत्याध्याय, संगीतरत्नाकर आदि में प्राय: उन्हीं मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। इसी क्रम में अभिनय दर्पण नामक ग्रन्थ में भरत के नाट्य शास्त्र के अतिरिक्त कुछ अन्य मुद्राओं का भी सविधि वर्णन है। तदनन्तर विदेशी विद्वानों ने भारतीय नाट्य में उपयोगी अनेक मुद्राओं का प्रतिपादन किया है।

इस प्रकार नाट्यकला की परम्परा में 200 से अधिक मुद्राएँ प्राप्त होती है। इन मुद्राओं में भरत नाट्य की कुछ मुद्राओं के भिन्न स्वरूप भी प्राप्त होते हैं।

यदि नाट्य मुद्राओं की तुलना अन्य परम्परा की मुद्राओं के साथ की जाए तो उनमें प्राय: असमानता मालूम होती है। नाट्य ग्रन्थों में उपलब्ध किसी भी मुद्रा का नाम प्रचलित परम्पराओं में प्राप्त नहीं होता है तथा अन्य परम्परा की मुद्राओं का भी इसमें नामोल्लेख नहीं है।

इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि नाट्य मुद्राओं का अस्तित्त्व स्वतन्त्र है।

जैन ग्रन्थों में वर्णित मुद्राओं की क्रमिक सूची

1. पादलिप्ताचार्य विरचित निर्वाणकलिका में उपदिष्ट मुद्राएँ

(i) स्थान एवं शरीरादि की शुद्धि सम्बन्धी मुद्राएँ– 1. नाराच मुद्रा 2. कुम्भ मुद्रा।

(ii) हृदय आदि अंगों पर न्यास करने सम्बन्धी मुद्राएँ– 3. हृदय मुद्रा 4. शिरो मुद्रा 5. शिखा मुद्रा 6. कवच मुद्रा 7. क्षुर मुद्रा 8. अस्त्र मुद्रा।

(iii) आह्वान सम्बन्धी मुद्राएँ– 9. महा मुद्रा 10. धेनु मुद्रा 11. आवाहनी मुद्रा 12. स्थापनी मुद्रा 13. संनिधानी मुद्रा 14. निष्ठुर मुद्रा।

(iv) जयादि देवियों की पूजा संबंधित मुद्राएँ– 15. गोवृष मुद्रा 16. त्रासनी मुद्रा 17. पाश मुद्रा 18. अंकुश मुद्रा 19. ध्वज मुद्रा 20 वरद मुद्रा।

(v) सोलह विद्यादेवियों की आराधना सम्बन्धी मुद्राएँ– 21. शंख मुद्रा 22. शक्ति मुद्रा 23. श्रृंखला मुद्रा 24. वज्र मुद्रा 25. चक्र मुद्रा 26. पद्म मुद्रा 27. गदा मुद्रा 28. घण्टा मुद्रा 29. कमण्डलु मुद्रा 30. परशु मुद्रा (प्रथम) 31. परशु मुद्रा (द्वितीय) 32. वृक्ष मुद्रा 33. सर्प मुद्रा 34. खड्ग मुद्रा 35. ज्वलन मुद्रा 36. श्रीमणि मुद्रा।

(vi) दश दिक्पालों को प्रसन्न करने सम्बन्धी मुद्राएँ– 37. दण्ड मुद्रा 38. पाश मुद्रा 39. शूल मुद्रा (प्रथम) 40. शूल मुद्रा (द्वितीय)।

(vii) विसर्जन सम्बन्धी मुद्रा– 41. संहार मुद्रा।

(viii) देवदर्शन सम्बन्धी मुद्राएँ– 42. परमेष्ठी मुद्रा (प्रथम) 43. परमेष्ठी मुद्रा (द्वितीय) 44. पार्श्व मुद्रा

(IX) प्रतिष्ठा में उपयोगी मुद्राएँ– 45. अंजलि मुद्रा 46. कपाट मुद्रा 47. जिन मुद्रा 48. सौभाग्य मुद्रा 49. योनि मुद्रा 50. गरूड़ मुद्रा 51. नमस्कृति मुद्रा 52. मुक्ताशुक्ति मुद्रा 53. प्रणिपात मुद्रा 54. त्रिशिखा मुद्रा 55. भृंगार मुद्रा 56. योगिनी मुद्रा 57. क्षेत्रपाल मुद्रा 58. डमरूक मुद्रा 59. अभय मुद्रा 60. वरद मुद्रा 61. अक्षसूत्र मुद्रा 62 त्रासनी मुद्रा 63. बिम्ब मुद्रा।[6]

2. मुद्राविचार प्रकरण में प्रतिपादित मुद्राएँ

यह प्रकरण संस्कृत गद्य भाषा में रचित है। इस प्रकरण में कुल 63 मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। इसमें सभी मुद्राएँ परिभाषा के साथ दी गई है तथा निर्वाणकलिका में वर्णित मुद्राओं के समान ही है अत: पुनरावर्त्तन नहीं किया जा रहा है।[7]

3. श्री चन्द्राचार्यकृत सुबोधा सामाचारी में उल्लिखित मुद्राएँ

1. प्रवचन मुद्रा 2. पार्श्व मुद्रा 3. चक्र मुद्रा 4. वज्र मुद्रा 5. परमेष्ठी मुद्रा 6. सुरभि मुद्रा 7. गरूड़ मुद्रा 8. पवज्ज मुद्रा 9. मुद्गर मुद्रा 10. तर्जनी मुद्रा 11. जिन मुद्रा 12. मुक्ताशुक्ति मुद्रा 13. अंजलि मुद्रा 14. पद्म मुद्रा 15. सौभाग्य मुद्रा 16. आसन मुद्रा।[8]

सुबोधा समाचारी में उक्त मुद्राओं का नामोल्लेख मात्र है और उनका सूचन वासचूर्ण एवं अक्षत अभिमन्त्रण, बिम्ब दर्शन, बिम्ब स्पर्श, बिम्ब रक्षा, अर्घ्य

अर्पण, धर्म देशना इत्यादि के संदर्भ में किया गया है।

4. तिलकाचार्य सामाचारी में उल्लिखित मुद्राएँ

1. अग्नि मुद्रा 2. हनन मुद्रा 3. भूमिशुद्धि मुद्रा 4. शंख मुद्रा 5. कलश मुद्रा 6. योगिनि मुद्रा 7. चक्र मुद्रा 8. वज्र मुद्रा 9. परमेष्ठी मुद्रा 10. गरूड़ मुद्रा 11. धारण मुद्रा 12. जिन मुद्रा 13. अंग मुद्रा 14. अंजलि मुद्रा 15. आसन मुद्रा 16. सुरभि मुद्रा 17. प्रवचन मुद्रा 18. अंजलि मुद्रा 19 सौभाग्य मुद्रा।[9]

तिलकाचार्य सामाचारी में उपरोक्त मुद्राओं का सूचन वासचूर्ण एवं अक्षत अभिमन्त्रित करने के संदर्भ में हुआ है।

5. सामाचारी संग्रह में भी उपर्युक्त 18 मुद्राओं का नाम निर्देश किया गया है।

6. जिनप्रभसूरि कृत विधिमार्गप्रपा में उल्लिखित मुद्राएँ

(i) स्थान एवं शरीर को पवित्र करने की मुद्राएँ– 1. नाराच मुद्रा 2. कुम्भ मुद्रा।

(ii) हृदय आदि अंगों पर न्यास करने की मुद्राएँ– 3. हृदय मुद्रा 4. शिरो मुद्रा 5. शिखा मुद्रा 6. कवच मुद्रा 7. क्षुर मुद्रा 8. अस्त्र मुद्रा।

(iii) देवी-देवताओं को आह्वान आदि करने की मुद्राएँ– 9. महामुद्रा 10. धेनु मुद्रा 11. आवाहनी मुद्रा 12. स्थापनी मुद्रा 13. संनिधानी मुद्रा 14. निष्ठुर मुद्रा 15. आवाहन मुद्रा 16. स्थापन मुद्रा 17 निरोध मुद्रा 18. अवगुण्ठन मुद्रा।

(iv) जयादि देवताओं की पूजा करने की मुद्राएँ– 19. गोवृष मुद्रा 20. त्रासनी मुद्रा 21. पाश मुद्रा 22. अंकुश मुद्रा 23. ध्वज मुद्रा 24. वरद मुद्रा।

(v) सोलह विद्यादेवियों की मुद्राएँ– 25. शंख मुद्रा 26. शक्ति मुद्रा 27. श्रृंखला मुद्रा 28. वज्र मुद्रा 29. चक्र मुद्रा 30 पद्म मुद्रा 31. गदा मुद्रा 32. घण्टा मुद्रा 33. कमण्डलु मुद्रा 34. परशु मुद्रा (प्रथम) 35. परशु मुद्रा (द्वितीय) 36. वृक्ष मुद्रा 37. सर्प मुद्रा 38. खड्ग मुद्रा 39. ज्वलन मुद्रा 40. श्रीमणि मुद्रा।

(vi) दश दिक्पालों को संतुष्ट करने की मुद्राएँ– 41. दण्ड मुद्रा 42. पाश मुद्रा 43. शूल मुद्रा (प्रथम) 44. शूल मुद्रा (द्वितीय) 45. संहार मुद्रा।

(vii) प्रभु दर्शन आदि से संबंधित मुद्राएँ– 46. परमेष्ठी मुद्रा (प्रथम) 47. परमेष्ठी मुद्रा (द्वितीय) 48. पार्श्व मुद्रा।

(viii) प्रतिष्ठा आदि में उपयोगी मुद्राएँ– 49. अंजलि मुद्रा 50. कपाट मुद्रा 51. जिन मुद्रा 52. सौभाग्य मुद्रा 53. सबीज सौभाग्य मुद्रा 54. योनि मुद्रा (प्रथम) 55. योनि मुद्रा (द्वितीय) 56. गरूड़ मुद्रा 57. नमस्कृति मुद्रा 58. मुक्ताशुक्ति मुद्रा 59. प्रणिपात मुद्रा 60. त्रिशिखा मुद्रा 61. भृंगार मुद्रा 62. योगिनी मुद्रा 63. क्षेत्रपाल मुद्रा 64. डमरूक मुद्रा 65. अभय मुद्रा 66. वरद मुद्रा 67. अक्षसूत्र मुद्रा 68. बिंब मुद्रा 69. प्रवचन मुद्रा 70. मंगल मुद्रा 71. आसन मुद्रा 72. अंग मुद्रा 73. योग मुद्रा 74. पर्वत मुद्रा 75. विस्मय मुद्रा 76. नाद मुद्रा 77. बिन्दु मुद्रा।[10]

7. श्री वर्धमानसूरिकृत आचारदिनकर में उल्लिखित मुद्राएँ

1. परमेष्ठी मुद्रा 2. मुद्गर मद्रा 3. वज्र मुद्रा 4. गरूड़ मुद्रा 5. जिन मुद्रा 6. मुक्ताशुक्ति मुद्रा 7. अंजलि मुद्रा 8. सुरभि मुद्रा 9. पद्म मुद्रा 10. चक्र मुद्रा 11. सौभाग्य मुद्रा 12. यथाजात मुद्रा 13. आरात्रिक मुद्रा 14. वीर मुद्रा 15. विनीत मुद्रा 16. प्रार्थना मुद्रा 17. परशु मुद्रा 18. छत्र मुद्रा 19. प्रियंकरी मुद्रा 20. गणधर मुद्रा 21. योग मुद्रा 22. कच्छप मुद्रा 23. धनुःसंधान मुद्रा 24. योनि मुद्रा 25. दण्ड मुद्रा 26. सिंह मुद्रा 27. शक्ति मुद्रा 28. शंख मुद्रा 29. पाश मुद्रा 30. खड्ग मुद्रा 31. कुन्त मुद्रा 32. वृक्ष मुद्रा 33. शाल्मकी मुद्रा 34. कन्दुक मुद्रा 35. नागफण मुद्रा 36. माला मुद्रा 37. पताका मुद्रा 38. घण्टा मुद्रा 39. प्रायश्चित्त विशोधिनी मुद्रा 40. ज्ञान कल्पलता मुद्रा 41. मोक्षलता मुद्रा 42. कल्पवृक्ष मुद्रा।[11]

आचार दिनकर में निर्दिष्ट उक्त मुद्राओं का प्रयोग प्रतिष्ठा, पूजन, पदारोहण, ध्यान, मंत्रोपासना, वासचूर्ण, अभिमन्त्रण, अक्षत अभिमन्त्रण, नन्दि विधान आदि मांगलिक कृत्यों में किया जाता है।

8. लघु विद्यानुवाद में परिभाषित मुद्राएँ

1. वज्र मुद्रा 2. पद्म मुद्रा 3. चक्र मुद्रा 4. परमेष्ठी मुद्रा (प्रथम) 5. परमेष्ठी मुद्रा (द्वितीय) 6. अंजलि मुद्रा (पल्लव मुद्रा) 7. सौभाग्य मुद्रा 8. मुक्ताशुक्ति मुद्रा 9. मुद्गर मुद्रा 10. तर्जनी मुद्रा 11. प्रवचन मुद्रा 12. धेनु मुद्रा 13. आसन मुद्रा 14. नाराच मुद्रा 15. जन मुद्रा 16. मीन मुद्रा 17. अंकुश मुद्रा 18. हृदय मुद्रा 19. शिरो मुद्रा 20. शिखा मुद्रा 21. कवच मुद्रा 22. क्षुर मुद्रा 23. अस्त्र मुद्रा 24. महा मुद्रा 25. आवाहनी मुद्रा 26. स्थापनी मुद्रा

27. सन्निधानी मुद्रा 28. निष्ठुरा मुद्रा 29. त्रासनी (पूज्य) मुद्रा 30. पाश मुद्रा 31. ध्वज मुद्रा 32. वरद मुद्रा 33. शंख मुद्रा 34. शक्ति मुद्रा 35. श्रृंखला मुद्रा 36. मन्दरमेरू मुद्रा (पंचमेरू मुद्रा) 37. गदा मुद्रा 38. घण्टा मुद्रा 39. परशु मुद्रा 40. वृक्ष मुद्रा 41. सर्प मुद्रा 42. खड्ग मुद्रा 43. ज्वलन मुद्रा 44. दण्ड मुद्रा।[12]

9. श्री पुण्यरत्नसूरि विजय के शिष्य ऋषिगुणरत्न द्वारा लिखित मुद्राविधि में उल्लिखित मुद्राएँ

1. ॐकार मुद्रा 2. ह्रींकार मुद्रा 3. नकार मुद्रा 4. मकार मुद्रा 5. सिंह मुद्रा 6. ऐंकार मुद्रा 7. शंख मुद्रा 8. चतुष्कपट्ट मुद्रा 9. नागवेलिपत्रद्वय मुद्रा 10. योनि मुद्रा 11. पंच परमेष्ठि मुद्रा (प्रथम) 12. पंच परमेष्ठि मुद्रा (द्वितीय) 13. त्रिद्वारजिनालय मुद्रा 14. स्वस्तिक मुद्रा 15. चतुर्मुख मुद्रा 16. कल्याणत्रय मुद्रा 17. सामान्य जिनालय मुद्रा 18. कपाट मुद्रा 19. तोरण मुद्रा 20. शक्ति मुद्रा 21. ईश्वर मुद्रा 22. अमृतसंजीवनी मुद्रा 23. त्रिनेत्र मुद्रा 24. त्रिपुरस मुद्रा 25. मशीत मुद्रा 26. गृहतोड़ा मुद्रा 27. सिंहासन मुद्रा 28. पद्मकोश मुद्रा 29. सामान्य पद्म मुद्रा 30. नेत्र मुद्रा 31. विकसित पद्म मुद्रा 32. सनालकमल मुद्रा 33. अश्व मुद्रा 34. गज मुद्रा 35. दण्ड मुद्रा 36. पार्श्वनाथ मुद्रा 37. गरूड़ मुद्रा 38. नाराच मुद्रा 39. सतत मुद्रा 40. वापी मुद्रा 41. कुंभ मुद्रा 42. अपरकुंभ मुद्रा 43. कुंभ मुद्रा 44. हृदय मुद्रा 45. शिरो मुद्रा 46. शिखा मुद्रा 47. कवच मुद्रा 48. घृतभृतकुंभ मुद्रा 49. क्षुर मुद्रा 50. भृंगार मुद्रा 51. अस्त्र मुद्रा 52. धेनु मुद्रा 53. प्रतिमा मुद्रा 54. स्थापनी मुद्रा 55. आवाहनी मुद्रा 56. संनिधानी मुद्रा 57. निष्ठुरा मुद्रा 58. प्रवहण मुद्रा 59. स्थापन मुद्रा 60. अवगुण्ठन मुद्रा 61. निरोध मुद्रा 62. शासनी मुद्रा 63. गोवृषण मुद्रा 64. पाश मुद्रा 65. महा मुद्रा 66. अपरपाश मुद्रा 67. अंकुश मुद्रा 68. अपर अंकुश मुद्रा 69. महांकुश मुद्रा 70. महानाशपाश मुद्रा 71. ध्वज मुद्रा 72. शरा मुद्रा 73. वज्र मुद्रा 74. श्रृंखला मुद्रा 75. वरद मुद्रा 76. चक्र मुद्रा 77. नमस्कृति मुद्रा 78. मुक्ताशुक्ति मुद्रा 79. प्रणिपात मुद्रा 80. योनि मुद्रा 81. त्रिमुख मुद्रा 82. योगिनी मुद्रा 83. डमरूक मुद्रा 84. क्षेत्रपाल मुद्रा 85. अभय मुद्रा 86. पाशक मुद्रा 87. खड्ग मुद्रा 88. प्रवचन मुद्रा 89. योग मुद्रा 90 मंगल मुद्रा 91. आसन मुद्रा 92. अंग मुद्रा 93. पर्वत मुद्रा

94. विस्मया मुद्रा 95. चुंटन मुद्रा 96. श्रीवत्स मुद्रा 97. अक्ष मुद्रा 98. गदा मुद्रा 99. घण्ट मुद्रा 100 नाद मुद्रा 101. कमण्डलु मुद्रा 102. परशु मुद्रा 103. अपर परशु मुद्रा 104. वृक्ष मुद्रा 105. सर्प मुद्रा 106.ज्वलन मुद्रा 107. शिवशासन मुद्रा 108. शूल मूद्रा 109. श्रीमणि मुद्रा 110. शूल मुद्रा 111. संहार मुद्रा 112. परमेष्ठि मुद्रा 113. अंजलि मुद्रा 114. जिन मुद्रा 115. सौभाग्य मुद्रा।[13]

10. गणि कल्याणविजय रचित कल्याणकलिका में उल्लिखित मुद्राएँ

1. जिन मुद्रा 2. कुम्भ मुद्रा 3. नमस्कार मुद्रा 4. प्रणिपात मुद्रा 5. भृंगार मुद्रा 6. अभय मुद्रा 7. त्रासनी मुद्रा 8. वज्र मुद्रा 9. पद्म मुद्रा 10. चक्र मुद्रा 11. परमेष्ठी मुद्रा 12. अंग मुद्रा 13. अंजलि मुद्रा 14. सौभाग्य मुद्रा 15. गरूड़ मुद्रा 16. मुक्ताशुक्ति मुद्रा 17. मुद्गर मुद्रा 18. तर्जनी मुद्रा 19. प्रवचन मुद्रा 20. धेनु मुद्रा 21. आसन मुद्रा 22. अंकुश मुद्रा 23. मत्स्य मुद्रा 24. कवच मुद्रा 25. अस्त्र मुद्रा 26. क्षुर मुद्रा।

कल्याणक कलिका में उपर्युक्त मुद्राओं का निर्देश प्रतिष्ठा एवं पूजा आदि के सन्दर्भ में किया गया है।

27. आवाहनी मुद्रा 28. स्थापनी मुद्रा 29. संनिधानी मुद्रा 30. संनिरोधिनी मुद्रा 31. संमुखीकरण मुद्रा 32. अवगुंठनी मुद्रा 33. संहार मुद्रा ।[14]

ये मुद्राएँ जाप-अनुष्ठान में उपयोगी कही गई है।

11. आचार्य तुलसी के शिष्य मुनि श्री किशनलालजी द्वारा प्रणीत मुद्राएँ

1. अर्हं मुद्रा 2. सिद्ध मुद्रा 3. आचार्य मुद्रा 4. उपाध्याय मुद्रा 5. साधु मुद्रा।[15]

तुलना

जैन उपासना पद्धति में उपयोगी पंचांग प्रणिपात, उत्कटासन, वीरासन, कायोत्सर्ग, मुक्ताशुक्ति आदि मुद्राओं का वर्णन आगम एवं टीका साहित्य में स्पष्ट रूप से उपलब्ध हो जाता है, किन्तु मन्त्र-जाप आदि की विशिष्ट साधनाओं एवं पूजा-प्रतिष्ठा आदि प्रसंगों में उपयोगी मुद्राओं की एक क्रमिक सूची सर्वप्रथम निर्वाणकलिका में प्राप्त होती है। इसमें मुद्रा प्रयोग की विधि भी दी गई है।

तदनन्तर निर्वाणकलिका ग्रन्थ का अनुसरण करते हुए मुद्राविचार प्रकरण में यथावत उन्हीं 63 मुद्राओं का उल्लेख किया गया है।

तत्पश्चात सुबोधासामाचारी में 16 मुद्राओं के नाम लगभग निर्वाणकलिका से मिलते-जुलते हैं। इसी तरह तिलकाचार्यसामाचारी में निर्दिष्ट मुद्राओं के नाम भी प्राय: निर्वाणकलिका से साम्य रखते हैं।

उसके पश्चात विधिमार्गप्रपाकार ने भी निर्वाणकलिका का अनुसरण करते हुए तत्सम्बन्धी लगभग सभी मुद्राओं को अपने ग्रन्थ में समाविष्ट किया है तथा 14 मुद्राएँ उससे अतिरिक्त भी बतायी है।

उसके बाद आचारदिनकर में 42 मुद्राएँ विधिवत कही गई हैं इनमें से अधिकांश मुद्राएँ पूर्ववर्ती ग्रन्थों से भिन्न हैं। इसी क्रम में लघुविद्यानुवाद के अन्तर्गत 44 मुद्राओं का वर्णन प्राप्त होता है जो अक्रम पूर्वक निर्वाणकलिका एवं विधिमार्गप्रपा से पूर्ण साम्यता रखता है।

इसी भाँति ऋषिगुणरत्न द्वारा लिखित मुद्राविधि में 115 मुद्राओं का सविधि निरूपण किया गया है जिनमें लगभग 60 मुद्राएँ विधिमार्गप्रपा के समान ही है। इसके अतिरिक्त कुछ मुद्राओं के नाम समान हैं किन्तु प्रयोग विधि भिन्न है तथा कुछ मुद्राओं की प्रयोग विधि समान है परन्तु नामों में भिन्नता है।

कल्याणकलिका में संग्रहित मुद्राएँ उपरोक्त ग्रन्थों से ही उद्धृत होनी चाहिए। आधुनिक विधिकारक कल्याणकलिका में निर्दिष्ट मुद्राओं का ही विशेष उपयोग करते हैं। इसके सिवाय पंचाशकप्रकरण, षोडशकप्रकरण, प्रवचनसारोद्धार, सूरिमन्त्र की साधना विधि इत्यादि कृतियों में भी मुद्राओं के नाम प्राप्त होते हैं, किन्तु वहाँ उनका निरूपण साधना विधि की अपेक्षा से है जबकि निर्वाणकलिका आदि ग्रन्थों में मुद्राओं के सम्बन्ध में स्वतन्त्र विचार किया गया है।

वैदिक ग्रन्थों में प्रतिपादित मुद्राओं की सूची

1. घेरण्ड संहिता में उल्लिखित मुद्राएँ

1. महा मुद्रा 2. नभो मुद्रा 3. उड्डीयानबन्ध मुद्रा 4. जालन्धर बन्ध मुद्रा 5. मूलबन्ध मुद्रा 6. महाबन्ध मुद्रा 7. महावेध मुद्रा 8. खेचरी मुद्रा 9. विपरीतकरणी मुद्रा 10. योनि मुद्रा 11. वज्रोली मुद्रा 12. शक्तिचालिनी मुद्रा 13. ताड़ागी मुद्रा 14. माण्डुकी मुद्रा 15. शाम्भवी मुद्रा 16. पंचधारणा मुद्रा

17. आश्विनी मुद्रा 18. पाशिनी मुद्रा 19. काकी मुद्रा 20. मातंगिनी मुद्रा 21. भुजंगिनी मुद्रा।[16]

2. शिवसंहिता में प्ररूपित मुद्राएँ

1. महा मुद्रा 2. महाबन्ध मुद्रा 3. महावेध मुद्रा 4. खेचरी मुद्रा 5. जालन्धर बन्ध मुद्रा 6. मूलबन्ध मुद्रा 7. विपरीतकरणी मुद्रा 8. उड्डानबंध मुद्रा 9. वज्रोली मुद्रा 10. शक्तिचालिनी मुद्रा।[12]

3. गोरक्षसंहिता में परिभाषित मुद्राएँ

1. शक्तिचालिनी मुद्रा 2. महामुद्रा 3. नभो मुद्रा 4. उड्डीयान बन्ध मुद्रा 5. जालन्धर बन्ध मुद्रा 6. मूलबन्ध मुद्रा 7. खेचरी मुद्रा 8. विपरीतकरणी मुद्रा 9. काकी मुद्रा।[18]

4. हठयोग प्रदीपिका में निर्देशित मुद्राएँ

1. महामुद्रा 2. महाबंध मुद्रा 3. महावेध मुद्रा 4. खेचरी मुद्रा 5. उड्डियान मुद्रा 6. मूलबंध मुद्रा 7. जालंधर बंध मुद्रा 8. विपरीतकरणी मुद्रा 9. वज्रोली मुद्रा 10. शक्तिचालन मुद्रा।[19]

ये मुद्राएँ जन्म और मरण की परम्परा को नष्ट करने का सामर्थ्य रखती हैं।

5. योगतत्त्वोपनिषद् में चर्चित मुद्राएँ

1. महाबन्ध मुद्रा 2. महावेध मुद्रा 3. खेचरी मुद्रा 4. जालंधर बन्ध मुद्रा 5. उड्डीयान बंध मुद्रा 6. मूल बंध मुद्रा 7. अमरोली मुद्रा 8. वज्रोली मुद्रा 9. सहजोली मुद्रा।[20]

6. योगचूड़ामणि उपनिषत् में विवेचित मुद्राएँ

1. महामुद्रा 2. नभो मुद्रा 3. उड्डियान बंध मुद्रा 4. जालन्धर बंध मुद्रा 5. मूलबंध मुद्रा 6. खेचरी मुद्रा 7. योनि मुद्रा।[21]

7. योगकुण्डली उपनिषत् में प्ररूपित मुद्राएँ

1. मूलबन्ध मुद्रा 2. उड्डीयान बन्ध मुद्रा 3. जालन्धर बंध मुद्रा 4. खेचरी मुद्रा।[22]

8. तेजोबिन्दुपनिषत् में मूलबन्ध नामकी एक मुद्रा का ही उल्लेख है।[23]

9. पुराण साहित्य में वर्णित मुद्राएँ

ब्रह्मपुराण में निम्न आठ मुद्राओं का उल्लेख प्राप्त होता है–

1. पद्म मुद्रा 2. शंख मुद्रा 3. श्रीवत्स मुद्रा 4. गदा मुद्रा 5. गरूड़ मुद्रा 6. चक्र मुद्रा 7. खड्ग मुद्रा 8. शाङ्र्गधनुष मुद्रा।[24]

नारदीयपुराण में भी पूर्वोक्त आठ मुद्राएँ एक साथ प्राप्त होती है।

1. पद्म मुद्रा 2. शंख मुद्रा 3. श्रीवत्स मुद्रा 4. गदा मुद्रा 5. गरूड़ मुद्रा 6. चक्र मुद्रा 7. खड्ग मुद्रा 8. शाङ्र्गधनुष मुद्रा।[25]

नारदीय पुराण में दीक्षा, मन्त्र जप, देवपूजन आदि प्रसंगों में निम्न मुद्राओं के नाम भी उपलब्ध होते हैं जैसे कि

योनि मुद्रा, मुष्टि मुद्रा, गो मुद्रा, कुम्भ मुद्रा, तत्त्व मुद्रा, मत्स्य मुद्रा, शंख मुद्रा, मूशल मुद्रा, चक्र मुद्रा, परभीकरण मुद्रा, महा मुद्रा, योनि मुद्रा, गारूडी मुद्रा, मालिनी मुद्रा, धेनु मुद्रा, शैवीषडंग मुद्रा, कमल मुद्रा, खेचरी मुद्रा।[26]

शिव पुराण में शिव की पूजा से सम्बन्धित पाँच मुद्राओं का उल्लेख मिलता है- 1. आवाहन मुद्रा 2. स्थापन मुद्रा 3. सन्निरोधन मुद्रा 4. निरीक्षण मुद्रा 5. नमस्कार मुद्रा।[27]

नारदीयपुराण में निम्न आठ मुद्राएँ देवी-देवताओं के आयुध, वाहन या चिह्न की सूचक कही गई हैं–

1. पद्म मुद्रा 2. शंख मुद्रा 3. श्रीवत्स मुद्रा 4. गदा मुद्रा 5. गरूड़ मुद्रा 6. चक्र मुद्रा 7. खड्ग मुद्रा और 8. शाङ्र्ग मुद्रा।[28]

ब्रह्माण्डपुराण में विष्णु पूजा के समय प्रयुक्त होने वाली आठ मुद्राओं का उल्लेख मिलता है।[29]

कालिकापुराण में देवी पूजा से सम्बन्धित 108 मुद्राओं का विस्तृत वर्णन किया गया है जिनमें से निम्न 55 मुद्राएँ देवताओं को प्रसन्न करने वाली मानी गई हैं–

1. धेनु मुद्रा 2. सम्पुट मुद्रा 3. प्राञ्जलि मुद्रा 4. बिल्व मुद्रा 5. पद्म मुद्रा 6. नाराच मुद्रा 7. मुण्ड मुद्रा 8. दण्ड मुद्रा 9. योनि मुद्रा 10. अर्घ मुद्रा 11. वन्दनी मुद्रा 12. महा मुद्रा 13. महायोनि मुद्रा 14. भग मुद्रा 15. पुटक मुद्रा 16. निषङ्ग मुद्रा 17. अर्धचन्द्रक मुद्रा 18. अंग मुद्रा 19. द्विमुख मुद्रा 20. शंख मुद्रा 21. मुष्टिक मुद्रा 22. वज्र मुद्रा 23. रन्ध्र मुद्रा 24. षड्योनि मुद्रा

25. विमल मुद्रा 26. घट मुद्रा 27. शिखरिणी मुद्रा 28. तुङ्ग मुद्रा 29. पुण्ड्र मुद्रा 30 अध्रपुण्ड्रक मुद्रा 31. सम्मिलनी मुद्रा 32. कुण्ड मुद्रा 33. चक्र मुद्रा 34. शूल मुद्रा 35. सिंहवक्त्र मुद्रा 36. गोमुख मुद्रा 37. प्रोन्नाम मुद्रा 38. उन्नमनं मुद्रा 39. बिम्ब मुद्रा 40. पाशुपत मुद्रा 41. शुद्धम मुद्रा 42. त्याग मुद्रा 43. उत्सारिणी मुद्रा 44. प्रसारिणी मुद्रा 45. उग्र मुद्रा 46. कुण्डली मुद्रा 47. व्यूह मुद्रा 48. त्रिमुखा मुद्रा 49. आसिवल्ली मुद्रा 50. योग मुद्रा 51. भेद मुद्रा 52. मोहनम मुद्रा 53. बाण मुद्रा 54. धनु मुद्रा 55. तूणीर मुद्रा।

अन्य 53 मुद्राएँ विशिष्ट अवसरों पर प्रयुक्त होती हैं।[30] इस पुराण में महा मुद्रा, धेनु मुद्रा, योनि मुद्रा एवं खेचरी मुद्रा का भी वर्णन प्राप्त होता है।

श्रीमद्देवी भागवतपुराण में सन्ध्योपासना करने की विधि बताते हुए गायत्री जाप से पूर्व 24 प्रकार की हस्त मुद्राएँ प्रदर्शित करने का निर्देश है। उक्त मुद्राएँ वेदमाता गायत्री देवी को परम प्रसन्न करती हैं।[31]

10. माहेश्वराचार्य क्षेमराजकृत श्री स्वच्छन्दतन्त्र में वर्णित मुद्राएँ

1. आवाहनी मुद्रा 2. स्थापनी मुद्रा 3. योनि मुद्रा 4. निष्ठुरा मुद्रा। ये मुद्राएँ महादेवी भैरव को प्रदर्शित की जाती है।[32]

1. मुण्ड मुद्रा 2. खड्ग मुद्रा 3. कपाल मुद्रा 4. अंकुश मुद्रा 5. पाश मुद्रा 6. नाराच मुद्रा 7. धनु मुद्रा 8. घण्टा मुद्रा 9. वीणा मुद्रा 10. डमरू मुद्रा 11. त्रिशूल मुद्रा 12. वज्र मुदा 13. मुद्गर मुद्रा 14. परशु मुद्रा 15. शंख मुद्रा 16. पद्म मुद्रा।

ये मुद्राएँ भी लगभग महादेवी भैरव को दिखाई जाती है।[33]

11. अभिनवगुप्त प्रणीत तन्त्रालोक में निर्दिष्ट मुद्राएँ

1. पद्म मुद्रा 2. शूल मुद्रा 3. चक्र मुद्रा 4. शक्ति मुद्रा 5. दण्ड मुद्रा 6. वज्र मुद्रा 7. दंष्ट्रा मुद्रा 8. कपाल मुद्रा।

ये मुद्राएँ खेचरी मुद्रा से सम्बन्धित मानी गई हैं तथा इन्हें महामुद्रा कहा गया है।[34]

1. शशाङ्किनी (खेचरी) मुद्रा 2. व्योम मुद्रा 3. हृदय खेचरी मुद्रा 4. शान्ता मुद्रा 5. शक्ति मुद्रा 6. पंचकुण्डली मुद्रा 7. पंचकुण्डलिनी संहार मुद्रा 8. उत्क्रामणी मुद्रा 9. साहस मुद्रा।

ये मुद्राएँ भी खेचरी मुद्रा से सन्दर्भित कही गई हैं।[35]

जयाख्यसंहिता में मन्त्र भेद के आधार पर मुद्राओं को तीन भागों में बाँटा गया है। प्रथम विभाग में गर्भमन्त्रों की 26 मुद्राएँ निर्दिष्ट की गई हैं। द्वितीय विभाग में आधारासनमन्त्र की प्रधान रूप से आठ एवं सामान्य रूप से तेरह मुद्राओं का उल्लेख किया गया है। तृतीय विभाग में क्षेत्रेश आदि बीज की 21 मुद्रायें कही गई है।[36]

तन्त्रराजतन्त्र में देवताओं को प्रसन्न करने से सम्बन्धित निम्न मुद्राओं का सविधि वर्णन है।[37]

1. आवाहनी मुद्रा 2. स्थापिनी मुद्रा 3. सन्निरोधनी मुद्रा 4. अवगुण्ठनी मुद्रा 5. सन्निधापिनी मुद्रा 6. बाण मुद्रा 7. धनुष मुद्रा 8. पाश मुद्रा 9. अंकुश मुद्रा 10. नमस्क्रिया मुद्रा 11. संक्षोभिणी मुद्रा 12. द्राविणी मुद्रा 13. आकर्षिणी मुद्रा 14. वश्या मुद्रा 15. उन्मादिनी मुद्रा 16. महाकुंशा मुद्रा 17. खेचरी मुद्रा 18. बीज मुद्रा 19. योनि मुद्रा 20. शक्तिस्थापिनी मुद्रा।

ज्ञानार्णवतन्त्र में तीस से अधिक मुद्राएँ बतायी गयी है तथा ये मुद्रायें भी शिव आदि देवताओं के सम्मुख उन्हें प्रसन्न करने के लिए प्रदर्शित की जाती है।[38]

हेमाद्रि ने (13वीं शती) पंकज, निष्ठुर, व्योम एवं मुकुल नामक मुद्राओं पर प्रकाश डाला है।[39]

मित्रमिश्र ने आह्निकप्रकाश (वीर मित्रोदय का एक अंश) में गायत्री-जाप के समय प्रदर्शित की जाने वाली 24 मुद्राओं का स्वरूप वर्णन किया है।[40] वीरमित्रोदय के पूजा प्रकाश में निम्न 14 मुद्राएँ भी प्रदर्शित करने हेतु कही गई हैं–[41] 1. आवाहनी 2. स्थापनी 3. संमुखीकरणी 4. सन्निरोधनी 5. प्रसाद 6. अवगुण्ठन 7. शंख 8. चक्र 9. गदा 10. पद्म 11. मुसल 12. खड्ग 13. धनुष् 14. बाण मुद्रा।

देवणभट्ट ने स्मृतिचन्द्रिका में देव पूजा के समय प्रदर्शित की जाने वाली 24 मुद्राओं का नामोल्लेख किया है।[42]

शंकराचार्य विरचित प्रपंचसार की टीका में गीर्वाणेन्द्र सरस्वती ने (लगभग 14-15वीं शती) 54 मुद्राओं को प्रदर्शित करने की विधियाँ प्राचीनसंग्रह ग्रन्थ से उद्धृत करके दी है।[43]

पांचरात्र की अन्य संहिताओं में षडंग मुद्राओं का वर्णन है, जबकि

नारदीयसंहिता में द्वादशांग मुद्राओं का उल्लेख इस प्रकार है- 1. हृदय 2. सिर 3. शिखा 4. कवच 5. अस्त्र 6. नेत्र 7. उदर 8. पृष्ठ 9. बाहु 10. उरू 11. जंघा 12. पाद। यहाँ उदर से लेकर पाद तक छह मुद्राएँ अतिरिक्त है।

12. हिन्दू परम्परा में प्रचलित सामान्य मुद्राएँ

1. अंचित मुद्रा 2. अराल मुद्रा 3. अर्चित मुद्रा 4. आवाहन मुद्रा 5. चन्द्रकला मुद्रा 6. चतुरहस्त मुद्रा 7. चतुर मुद्रा 8. चिन मुद्रा 9. दंड मुद्रा 10. धेनु मुद्रा 11. गदा मुद्रा 12. गजहस्त मुद्रा 13. हंस मुद्रा 14. हरिण मुद्रा 15. हस्तस्वस्तिक मुद्रा 16. कपित्थ मुद्रा 17. कश्यप मुद्रा 18. कटि मुद्रा 19. कटिग मुद्रा 20. कट्यावलम्बित मुद्रा 21. कूर्पर मुद्रा 22. मुकुल मुद्रा 23. निद्रातहस्त मुद्रा 24. पद्म मुद्रा 25. पताका मुद्रा 26. प्रवर्तित हस्त मुद्रा 27. पुष्पाञ्जली मुद्रा 28. पुष्पपुट मुद्रा 29. सर्पकार मुद्रा 30. सिंहकर्ण मुद्रा 31. तत्त्व मुद्रा 32. वज्रपताका मुद्रा 33. वन्दना मुद्रा 34. विस्मय मुद्रा 35. विस्यम वितर्क मुद्रा।[45]

13. मतंगपारमेश्वर में निर्दिष्ट मुद्राएँ

1. शक्ति मुद्रा 2. बीज मुद्रा 3. प्रशांत मुद्रा 4. आवाहन मुद्रा 5. संहार मुद्रा।[46]

14. शारदातिलकतंत्र में वर्णित मुद्राएँ

1. आवाहनी मुद्रा 2. स्थापनी मुद्रा 3. सन्निधापनी मुद्रा 4. सन्निरोधनी मुद्रा 5. सम्मुखीकरणी मुद्रा 6. सकलीकृति मुद्रा 7. अवगुण्ठनी मुद्रा 8. धेनु मुद्रा 9. महा मुद्रा।[47]

15. शारदातिलकतन्त्र पर रचित राघव भट्टीय टीका सम्बन्धी मुद्राएँ

1. मूसल मुद्रा 2. योनि मुद्रा 3. चक्र मुद्रा 4. मालिनी मुद्रा 5. गरुड़ मुद्रा 6. गन्ध मुद्रा 7. ज्वालिनी मुद्रा 8. ज्ञान मुद्रा 9. पुस्तक मुद्रा 10. व्याख्यान मुद्रा 11. लक्ष्मी मुद्रा 12. पाश मुद्रा 13. दुर्गा मुद्रा 14. गणपति मुद्रा 15. विघ्न मुद्रा 16. अब्ज मुद्रा 17. बिम्ब मुद्रा 18. सप्त जिह्वा मुद्रा 19. मृग मुद्रा 20. गदा मुद्रा 21. श्रीवत्स मुद्रा 22. कौस्तुभ मुद्रा 23. वनमाला मुद्रा 24. हयग्रीव मुद्रा 25. नारसिंही मुद्रा 26. नृसिंह मुद्रा 27. अन्त्र मुद्रा 28. वस्त्र मुद्रा 29. द्रंष्ट्रा मुद्रा 30, दारण मुद्रा 31. विष्वक्सेन मुद्रा 32. वेणु मुद्रा 33. बिल्व मुद्रा 34. काम

मुद्रा 35. त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा 36. परशु मुद्रा 37. मृग मुद्रा 38. अभय मुद्रा 39. वर मुद्रा 40. लिंग मुद्रा 41. डमरूक मुद्रा।[48]

16. प्रपंचसार सारसंग्रह में प्रतिपादित मुद्राएँ

1. आवाहनी मुद्रा 2. स्थापिनी मुद्रा 3. सन्निधापनी मुद्रा 4. संरोधिनी मुद्रा 5. सम्मुखी मुद्रा 6. प्रार्थना मुद्रा, 7. वासुदेव मुद्रा 8. लिंग मुद्रा 9. विघ्न मुद्रा 10. योनि मुद्रा 11 जानु मुद्रा 12. नरसिंही मुद्रा 13. नृसिंही मुद्रा 14. वाराह मुद्रा (प्रथम प्रकार) 15. वाराह मुद्रा (द्वितीय प्रकार) 16. नृहरि मुद्रा 17. हयग्रीव मुद्रा 18. वेणु मुद्रा 19. लक्ष्मी मुद्रा 20. कुन्त मुद्रा 21. काम मुद्रा 22. त्रैलोक्यमोहिनी मुद्रा 23. दुर्गा मुद्रा 24. गरूड़ मुद्रा 25. शंख मुद्रा 26. गदा मुद्रा 27. अब्ज मुद्रा 28. मुख मुद्रा 29. चर्म मुद्रा 30. मूसल मुद्रा 31. अस्त्र मुद्रा 32. चक्र मुद्रा 33. दंष्ट्रा मुद्रा 34. श्रीवत्स मुद्रा 35. कौस्तुभ मुद्रा 36. वनमाला मुद्रा 37. त्रिशूल मुद्रा 38. डमरू मुद्रा 39. परशु मुद्रा 40. मृग मुद्रा 41. खट्वांग मुद्रा 42. कापाली मुद्रा 43. धेनु मुद्रा 44. बाण मुद्रा 45. नाराच मुद्रा 46. धेनु मुद्रा 47. इक्षुचाप मुद्रा 48. पंचपुष्पबाण मुद्रा 49. वर मुद्रा 50. अभय मुद्रा 51. अक्षमाला मुद्रा 52 पुस्तक मुद्रा 53. संहार मुद्रा।[49]

17. तान्त्रिक मुद्रा विज्ञान में संग्रहित मुद्राएँ

इस सम्पादित पुस्तिका में पूर्ववर्ती ग्रन्थों से उद्धृत कर अनेक मुद्राओं का सचित्र वर्णन किया गया है। यहाँ जानकारी की दृष्टि से उपलब्ध सभी मुद्राओं का नामोल्लेख मात्र कर रहे हैं जिससे तद्परम्परावर्ती अनुयायी वर्ग देवपूजा आदि में उनका उपयोग कर साधना को सर्वाङ्गीण बना सके। मुद्राओं की नाम सूची इस प्रकार है–[50]

1. विष्णु भगवान की उन्नीस मुद्राएँ 2. शिव भगवान की दस मुद्राएँ 3. गणेश की सात मुद्राएँ 4. दुर्गा शक्ति की दस मुद्राएँ 5. सरस्वती देवी की पाँच मुद्राएँ 6. भगवती त्रिपुरा की दस मुद्राएँ 7. अन्य देवियों की पाँच मुद्राएँ 8. अग्नि की तीन मुद्राएँ 9. अन्य देवताओं की दस मुद्राएँ 10.आह्वान आदि की दस मुद्राएँ 11. षडङ्गन्यास की छः मुद्राएँ 12. करन्यास की छः मुद्राएँ 13. जीवन्यास की छः मुद्राएँ 14. मातृकान्यास की ग्यारह मुद्राएँ 15. देवोपासना की नौ मुद्राएँ 16. उपचार की तेरह मुद्राएँ 17. नित्य पूजा की पाँच मुद्राएँ 18. ध्यानावेश प्रार्थना की पाँच मुद्राएँ 19. तत्वों की पन्द्रह मुद्राएँ

20. होम की आठ मुद्राएँ 21. शान्ति रक्षण की तेरह मुद्राएँ 22. बलिदान की चार मुद्राएँ 23. गायत्री साधना की बत्तीस मुद्राएँ 24. योग साधना की पन्द्रह मुद्राएँ 25. भोजन की पाँच मुद्राएँ।

18. सन्ध्याकालीन उपासना एवं गायत्री साधना में उपयोगी मुद्राएँ

1. सुमुखी मुद्रा 2. सम्पुटी मुद्रा 3. विंतत मुद्रा 4. विस्तृत मुद्रा 5. द्विमुखी मुद्रा 6. त्रिमुखी मुद्रा 7. चतुर्मुखी मुद्रा 8. पंचमुखी मुद्रा 9. षण्मुखी मुद्रा 10. अधोमुखी मुद्रा 11. व्यापकांजलिक मुद्रा 12. शकट मुद्रा 13. यमपाश मुद्रा 14. ग्रथित मुद्रा 15. सम्मुखोन्मुखी मुद्रा 16. प्रलम्ब मुद्रा 17. मुष्टिक मुद्रा 18. मत्स्य मुद्रा 19. कूर्म मुद्रा 20. वराहक मुद्रा 21. सिंहक्रान्त मुद्रा 22. महाक्रान्त मुद्रा 23. मुद्गर मुद्रा 24. पल्लव मुद्रा।[51]

उपरोक्त 24 मुद्राएँ गायत्री जाप से पूर्व की जाती है।

1. सुरभि मुद्रा 2. ज्ञान मुद्रा 3. वैराग्य मुद्रा 4. योनि मुद्रा 5. शंख मुद्रा 6. पंकज मुद्रा 7. लिंग मुद्रा 8. निर्वाण मुद्रा।

उक्त 8 मुद्राएँ गायत्री जाप के पश्चात की जाती है।

तुलना

हिन्दू साहित्य में सामान्य तौर पर हजारों मुद्राएँ उपलब्ध होती हैं जिनमें उपनिषद्, पुराण, संहिता आदि में वर्णित मुद्राएँ विशिष्ट कोटि की मानी गई है। यहाँ मुख्य रूप से योगसाधना में उपयोगी एवं वर्तमान परम्परा में प्रचलित मुद्राओं की सूची प्रस्तुत की गई है।

यदि तुलना की अपेक्षा विचार किया जाए तो उपनिषद् ग्रन्थों एवं संहिताओं में जिन मुद्राओं के उल्लेख हैं। वे पुराण आदि ग्रन्थों में नहींवत है। घेरण्ड आदि संहिताओं एवं उपनिषदों में मुख्यतया योग साधना सम्बन्धी कठिन मुद्राओं का वर्णन किया गया है जिनका प्रयोग दुःसाध्य है तथा उन ग्रन्थों को इस सम्बन्ध में प्राचीन भी माना जाता है।

तान्त्रिक एवं पौराणिक ग्रन्थों में वर्णित मुद्राएँ मुख्यतया पूजा-देवदर्शन-जाप आदि से सम्बन्धित हैं तथा कुछ मुद्राएँ आत्म साधना उपयोगी भी हैं। इनमें कुछ मुद्राएँ ऐसी भी हैं जिनका उल्लेख किसी ग्रन्थ विशेष में ही मिलता है तो कुछ अन्य ग्रन्थों में भी उपलब्ध होती हैं।

प्रस्तुत सूची से ज्ञात होता है कि परवर्ती लेखकों ने भी आत्मशुद्धि मूलक

मुद्राओं का प्रतिपादन किया है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि मुद्रा योग के सम्बन्ध में हर युग के साधकों ने एक नया चिन्तन प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। अगोचरी आदि मुद्राएँ अर्वाचीन कृतियों में उपलब्ध होने के बावजूद भी अध्यात्म एवं परम पद की प्राप्ति से सम्बन्धित हैं।

वर्तमान प्रचलित मुद्राएँ कुछ स्वतंत्र तो कुछ पूर्ववर्ती ग्रन्थों से उद्धृत की गई है। इन प्रचलित मुद्राओं का उपयोग अधिकांश रोग निवारण एवं मानस शान्ति हेतु किया जाता है। तदुपरान्त गायत्री मन्त्र आदि कई मुद्राओं का प्रयोग जाप आदि नित्य कर्म के लिए भी होता है।

यहाँ यह भी उल्लेख्य है कि कतिपय मुद्राओं के नाम समान होने पर भी ग्रन्थों में उनके भिन्न-भिन्न स्वरूप प्राप्त होते हैं, कुछ समान नाम की मुद्राएँ भिन्न-भिन्न कार्यों के लिए प्रयुक्त होती है तथा कुछेक मुद्राएँ नाम से भिन्न होने पर भी उनका स्वरूप एवं प्रयोग समान होता है। इसलिए गुरूगम पूर्वक मुद्राओं की साधना करते हुए उसके सुपरिणामों का अनुभव करना चाहिए।

बौद्ध परम्परा में उपलब्ध मुद्राओं की सूची

1. सप्तरत्न सम्बन्धी मुद्राएँ

1. चक्ररत्न मुद्रा 2. मणिरत्न मुद्रा 3. स्त्रीरत्न मुद्रा 4. पुरुषरत्न मुद्रा 5. हस्तिरत्न मुद्रा 6. अश्वरत्न मुद्रा 7. उपरत्न मुद्रा 8. खड्गरत्न मुद्रा।[52]

2. अष्ट मंगल सम्बन्धी मुद्राएँ

1. निधिघट मुद्रा 2. पद्मकुंजर मुद्रा 3. श्रीवत्स्य मुद्रा 4. सितातपत्र मुद्रा 5. सुवर्ण चक्र मुद्रा 6. वज्र आलोक मुद्रा 7. वज्र दर्शे मुद्रा 8. वज्र धर्मे मुद्रा 9. वज्र धूपे मुद्रा 10. वज्र गन्धे मुद्रा 11. वज्र गीते मुद्रा 12. वज्र हस्ये मुद्रा 13. वज्र लास्ये मुद्रा 14. वज्र मृदंगे मुद्रा 15. वज्र मुरजे मुद्रा 16. वज्र नृत्ये मुद्रा 17. वज्र पुष्पे मुद्रा 18. वज्र रास्ये मुद्रा 19. वज्र स्पर्शे मुद्रा 20. वज्र वंशे मुद्रा 21. वज्र वीने मुद्रा 22. कनक मत्स्य मुद्रा 23. कुण्ड ध्वज मुद्रा 24. शंखावर्त्त मुद्रा।[53]

3. म-म मडोस् से सम्बन्धित मुद्राएँ

1. सर्वधर्मः मुद्रा 2. सर्वतथागतेभ्यो मुद्रा 3. वज्रअमृतकुंडली मुद्रा

4. सर्वतथागत अवलोकिते मुद्रा 5. ज्ञान अवलोकिते मुद्रा 6. समन्त बुद्धनम् मुद्रा।[54]

4. अठारह कर्त्तव्य सम्बन्धी मुद्राएँ

1. बुत्सु बु-सम्मय इन् मुद्रा 2. चतुर दिग्बंध मुद्रा 3. हयग्रीवा मुद्रा 4. क-इन् मुद्रा 5. कोंगो-मो-इन् मुद्रा 6. पुष्पमाला मुद्रा 7. रत्नवाहन मुद्रा 8. शौ-छ-रौ-इन् मुद्रा 9. जौ-जु-म-को-कु-इन् मुद्रा 10 महावज्र चक्र मुद्रा 11. वज्रबंध मुद्रा।[55]

5. बारह द्रव्य हाथ मिलन सम्बन्धी मुद्राएँ

1. बिहररै सत गस्सहौ मुद्रा 2. बौद्ध गस्सहौ मुद्रा 3. फुकुशु गस्सहौ मुद्रा 4. हरनम गस्सहौ मुद्रा 5. कुम्मर गस्सहौ मुद्रा 6. मिहारित गस्सहौ मुद्रा 7. नेबिन गस्सहौ मुद्रा 8. ओत्तनश गस्सहौ मुद्रा 9. संफुट गस्सहौ मुद्रा 10 तैरै गस्सहौ मुद्रा 11. अदर गस्सहौ मुद्रा।[56]

6. भगवान बुद्ध की 40 मुद्राएँ

1. पेंग्-तुक्कर किरिय मुद्रा 2. पेंग्-सुंग् रब्मथुपयस् मुद्रा 3. पेंग्-लोय् तर्ड मुद्रा 4. पेंग्-सुंग् रब्यक् मुद्रा 5. भूमिस्पर्श मुद्रा 6. पेंग्-लिला मुद्रा 7. पेंग्-तवैनेत्र मुद्रा 8. पेंग्-छोंग्-क्रोम्-केडव् मुद्रा 9. पेंग्-फ्रसन्र्भत्र मुद्रा 10. पेंग्-छन्-समोर मुद्रा 11. पेंग्-लिला मुद्रा 12. पेंग्-फ्रातर्न एहिभिक्खु मुद्रा 13. पेंग्-प्लोंग-अर्यु-संग्खर्न मुद्रा 14. अभय मुद्रा 15. पेंग्-उह्म भत्र मुद्रा 16. पेंग्-पत्तकित् मुद्रा 17. पेंग्-फ्रा-कैत् ततु मुद्रा 18. पेंग्-फ्रतब्रे खनन् मुद्रा 19. पेंग्-हम्यत् मुद्रा 20. पेंग्-पलेलै मुद्रा 21. पेंग्-हम् फ्रा-काएँ-चन् मुद्रा 22. पेंग्-नकवलोक् मुद्रा 23. पेंग्-नकवलोक मुद्रा 24. पेंग्-सोंग्रुपुत्कंग मुद्रा 25. पेंग्-सोंग्-नम् फोन् मुद्रा 26. पेंग्-फ्रतोप्युन् मुद्रा 27. पेंग्-खोर्-फोन् मुद्रा 28. पेंग्-रम्-प्वेंग मुद्रा 29. पेंग्-संहलुप्नम्ममु अंगदुए बहद् मुद्रा 30. पेंग्-सोंग्-पिचरनचरथम् मुद्रा 31. पेंग्-फ्रदित्थंरोय्-फ्रबुद्धबत्र मुद्रा 32. पेंग्-प्रोंगह्युक्षन्खन् मुद्रा 33. पेंग्-रब्-फोल्म-म्वेंग मुद्रा 34. पेंग्-खब्फ्रवक्कलि मुद्रा 35. पेंग्-परिनिप्फर्न मुद्रा 36. पेंग्-सवोइमथुपयस् मुद्रा 37. पेंग्-सेदेत्फुत्थदन्नेर्न्मै मुद्रा 38. पेंग्-सोंखेम् मुद्रा 39. पेंग-थोंग्-तंग्-एततक्कसतर्न मुद्रा 40. पेंग्-पेर्दलोक मुद्रा।[57]

7. भगवान बुद्ध की मुख्य पाँच मुद्राएँ

1. अभय मुद्रा 2. ध्यान मुद्रा 3. भूमिस्पर्श मुद्रा 4. व्याख्यान मुद्रा 5. धर्मचक्रप्रवर्त्तन मुद्रा।[58]

8. भारतीय बौद्ध मुद्राएँ

1. आलोक मुद्रा 2. अर्घम् मुद्रा 3. बाम् मुद्रा 4. भूतडामर मुद्रा 5. धूप मुद्रा 6. गन्ध मुद्रा (प्रथम) 7. गन्ध मुद्रा (द्वितीय) 8. होह् मुद्रा 9. हुम् मुद्रा 10. जह् मुद्रा 11. करन मुद्रा 12. क्षेपण मुद्रा 13. मण्डल मुद्रा 14. नैवेद्य मुद्रा 15. पाद्यम् मुद्रा 16. पुष्प मुद्रा 17. सर्व बुद्ध बोधिसत्त्वानाम् मुद्रा 18. तोर्म मुद्रा 19. त्रिशरणा मुद्रा 20 विकसित पद्म मुद्रा।[59]

9. जापानी बौद्ध मुद्राएँ

1. अभिषेक गुह्य मुद्रा 2. अधिष्ठान मुद्रा 3. अग्निचक्र शमन मुद्रा (प्रथम) 4. अग्निचक्र शमन मुद्रा (द्वितीय) 5. अग्नि ज्वाला मुद्रा 6. अग्नि शाला मुद्रा 7. आह्वान मुद्रा 8. अजण्ट-टेम्बोरिन-इन् मुद्रा 9. अभिद-बुत्सु सेप्पौ-इन् मुद्रा (प्रथम) 10.अभिद-बुत्सु सेप्पौ-इन् मुद्रा (द्वितीय) 11. अभिद-बुत्सु-सेप्पौ-इन् मुद्रा (तृतीय) 12. अभिद-बुत्सु सेप्पौ-इन् मुद्रा (चतुर्थ) 13. अभिद-बुत्सु सेप्पौ-इन् मुद्रा (पंचम) 14. अभिद-बुत्सु सेप्पौ-इन् मुद्रा (छठी) 15. अन्-आय इन् मुद्रा 16. अन्-आय्-शोशु-इन् मुद्रा 17. अंजलि मुद्रा 18. अनुचित्त मुद्रा 19. अन्जन् इन् मुद्रा 20. बसर-उन्-कोंगौ-इन् मुद्रा (प्रथम) 21. बसर-उन्-कोंगौ-इन् मुद्रा (द्वितीय) 22. बुद्धालोचनी मुद्रा 23. बुद्धाश्रमण मुद्रा 24. बुप्पत्सु-इन् मुद्रा 25. चक्र मुद्रा 26. चक्रवर्ती मुद्रा 27. चि-केन-इन् मुद्रा (प्रथम) 28. चि-केन इन् मुद्रा (द्वितीय) 29. चिकु-चौ-शै-इन् मुद्रा 30. गगनगंज मुद्रा (प्रथम) 31. गगनगंज मुद्रा (द्वितीय) 32. गणधारन्-टेम्बौरिन्-इन् मुद्रा 33. गंधर्वराज मुद्रा 34. गे-बकु-केन-इन् मुद्रा (प्रथम) 35. गे-बकु-केन-इन् मुद्रा (द्वितीय) 36. गे-बकु-केन-इन् मुद्रा (तृतीय) 37. गौ-बकु-इन् मुद्रा 38. हयग्रीवा मुद्रा 39. हेमन्त मुद्रा 40. हौर्यूजि-टेम्बौरिन्-इन् मुद्रा 41. ईश्वर मुद्रा 42. ज्ञान मुद्रा 43. कन्शुकुन्देन्-इन् मुद्रा 44. कर्म-आकाशगर्भ मुद्रा 45. कटक मुद्रा 46. किचिजौ-इन् मुद्रा 47. किम्यौ-गस्सहौ मुद्रा 48. कोंगो-गस्सहौ मुद्रा 49. कोंगौ-केन्-इन्-मुद्रा (प्रथम) 50. कोंगौ-केन्-इन्-मुद्रा (द्वितीय) 51. नैबकु-केन्-इन् मुद्रा (प्रथम)

52. नैबकु-केन्-इन्-मुद्रा (द्वितीय) 53. नैबकु-केन्-इन् मुद्रा (तृतीय) 54. नीव-इन्-मुद्रा 55. न्यारै-केन्-इन् मुद्रा 56. ओंग्यौ-इन् मुद्रा (प्रथम) 57. ओंग्यौ-इन् मुद्रा (द्वितीय) 58. पुष्पमाला मुद्रा 59. रागराज मुद्रा 60. रत्नघट मुद्रा 61. रत्नप्रभा आकाशगर्भ मुद्रा 62. रेंजे-केन्-इन् मुद्रा 63. रूप मुद्रा 64. सहस्र भुजा अवलोकितेश्वर मुद्रा 65. सकै-सै-शौ-इन् मुद्रा 66. सन्-कौ-छौ-इन् मुद्रा 67. सेगन्-सेमुइ-इन् मुद्रा 68. सेमुई-इन् मुद्रा 69. शब्द मुद्रा (प्रथम) 70. शब्द मुद्रा (द्वितीय) 71. शक्र मुद्रा 72. शाक्यमुनि मुद्रा 73. शुमि-सेन्-हौ-इन् मुद्रा 74. सम्मनिंग-सिन्स् मुद्रा 75. सुप्रतिष्ठ मुद्रा 76. सूत्र मुद्रा 77. त्रैलोक्य विजय मुद्रा 78. वज्र मुद्रा (प्रथम, द्वितीय) 79. वज्र आकाश गर्भ मुद्रा 80. वज्रांजलि मुद्रा 81. वज्रकुल मुद्रा 82. वितर्क मुद्रा।[60]

10. गर्भधातु-वज्रधातु मण्डल सम्बन्धी मुद्राएँ

1. अचल अग्नि मुद्रा 2. अग्नि चक्र मुद्रा 3. अग्रज मुद्रा 4. अक्क-इन् मुद्रा 5. अंकुश मुद्रा 6. अनुज मुद्रा 7. अष्टदल पद्म मुद्रा 8. बाह्य बंध मुद्रा 9. बकु- जौ- इन् मुद्रा 10. बाण मुद्रा 11.बोन् जिकि- इन् मुद्रा 12. बु-बोसत्सु-इन् मुद्रा 13. बू-मौ-इन् मुद्रा 14. वु-जौ-इन् मुद्रा 15. चकषुर मुद्रा 16. चिन्तामणि मुद्रा (प्रथम) 17. चिन्तामणि मुद्रा (द्वितीय) 18. चिन्तामणि मुद्रा (तृतीय) 19. चिन्तामणि मुद्रा (चतुर्थ) 20. चिन्तामणि मुद्रा (पंचम) 21. चित्तगुह्य मुद्रा 22. चौ-बुत्सु-फु-इन् मुद्रा 23. चौ-कोंगौ-रेंजे-इन् मुद्रा 24. चौ-नेन्-जु-इन् मुद्रा 25. चौ जइ इन् मुद्रा 26. दै-कै-इन् मुद्रा 27. दै-ये-तो-नो-इन् मुद्रा 28. धारणी अवलोकितेश्वर मुद्रा 29. धर्मचक्र प्रवर्त्तन मुद्रा 30. धर्मचक्र प्रवर्त्तन बोधिसत्त्व वर्ग मुद्रा 31. धर्म प्रवर्त्तन मुद्रा 32. धृतराष्ट्र मुद्रा 33. धूप मुद्रा 34. फु-कौ-इन् मुद्रा 35. फु-कु-यौ-इन् मुद्रा 36. फुन्नु-केन्-इन् मुद्रा 37. फुत्सु-कु-यौ-इन् मुद्रा 38. गे-बुक-गो कौ मुद्रा 39. गे-इन् मुद्रा (प्रथम) 40. गे-इन् मुद्रा (द्वितीय) 41. गे-इन मुद्रा (तृतीय) 42. गे-इन् मुद्रा (चतुर्थ) 43. गे-कै-इन् मुद्रा 44. घण्टावदना मुद्रा 45. गो-सन्-जे मुद्रा 46. हकु-शौ-इन् मुद्रा (प्रथम) 47. हकु-शौ-इन् मुद्रा (द्वितीय) 48. हाय-कौ-इन् मुद्रा 49. होनजोन-बु-जौ-नो-इन् मुद्रा 50. होरनो-इन् मुद्रा 51.इस्सर-हौ-ब्यो-दौ-के-गो मुद्रा 52. जौ-रेंजे-इन् मुद्रा 53. ज्ञानश्री मुद्रा 54. जौ-फ्यूदौ-इन् मुद्रा 55. जौ-इन् मुद्रा (प्रथम) 56. जौ-इन् मुद्रा (तृतीय) 57. जौ-इन् मुद्रा

(चतुर्थ) 58. जौ-इन् मुद्रा (छठवीं) 59. जौ-इन् मुद्रा (सातवीं) 60. जौ-इन् मुद्रा (आठवीं) 61. जु-नि-कुशि-जि-शिन् इन् मुद्रा 62. कै-मोन्-इन् मुद्रा 63. कै-शिन्-जौ-इन् मुद्रा 64. काजि-कौ-सुइ-इन् मुद्रा 65. कवच मुद्रा (प्रथम) 66. कवच मुद्रा (द्वितीय) 67. कयेन-शौ-इन् मुद्रा 68. के-बोसत्सु- इन् मुद्रा 69. खड्ग मुद्रा (प्रथम) 70. खड्ग मुद्रा (द्वितीय) 71. खड्ग मुद्रा (तृतीय) 72. किम्बेइ-इन् मुद्रा 73. कौ-तकु मुद्रा 74. कोंगौ-रिन्-इन् मुद्रा 75. लोचन मुद्रा 76. महाआकाश गर्भ मुद्रा 77. महाज्ञान खड्ग मुद्रा 78. महाकाल मुद्रा 79. महाकर्म मुद्रा 80. मु-नो-शौ-शु-गौ-इन् मुद्रा 81. मुशोफुशि-इन् मुद्रा (प्रथम) 82. मुशोफुशि-इन् मुद्रा (द्वितीय) 83. मुशोफुशि-इन् मुद्रा (तृतीय) 84. नन् कन् निन् इन् मुद्रा 85. न्योरै-होस्सौ-इन् मुद्रा 86. न्यारै-सकु-इन् मुद्रा 87. न्यारै-शिन्-इन् मुद्रा 88. न्यारै-जो-इन् मुद्रा 89. पाश मुद्रा 90. पोथी मुद्रा 91. पूण मुद्रा 92. रत्न मुद्रा (प्रथम) 93. रत्न मुद्रा (द्वितीय) 94. रत्नकलश मुद्रा 95. रै-इन् मुद्रा 96. रेंजे-बु-शु-इन् मुद्रा 97. रेन्-रेंजे-इन् मुद्रा 98. स-इन् मुद्रा 99. सै-जै-इन् मुद्रा 100. सकु-इन् मुद्रा 101. सन्-कौ-इन् मुद्रा (प्रथम) 102. सन्-कौ-इन् मुद्रा (द्वितीय) 103. शंख मुद्रा (प्रथम) 104. शंख मुद्रा (द्वितीय) 105. शै-कौ-इन् मुद्रा 106. सीमाबन्ध मुद्रा 107. सौ-कौ-शु-गौ-इन् मुद्रा 108. स्थिराबोधि मुद्रा 109. तथागत दंष्ट्र मुद्रा 110 तथागतकुक्षि मुद्रा 111. तथागतवचन मुद्रा 112. तेजस बोधिसत्त्व मुद्रा 113. तेम्बौरिन्-इन्- मुद्रा 114. तौ-म्यो-इन् मुद्रा 115. त्रिशूल मुद्रा (प्रथम) 116. त्रिशूल मुद्रा (द्वितीय) 117. उपकेशिनी मुद्रा 118. उपाय पारमिता मुद्रा 119. उष्णीय मुद्रा 120. वैश्रवण मुद्रा 121. वज्र कश्यप मुद्रा (प्रथम) 122. वज्र कश्यप मुद्रा (द्वितीय) 123. वज्रमाला मुद्रा 124. वज्रमुष्टि मुद्रा (प्रथम) 125. वज्रमुष्टि मुद्रा (द्वितीय) 126. वज्रमुष्टि मुद्रा (तृतीय) 127. वज्रश्री मुद्रा 128. वर-काय-समय मुद्रा 129. वायु मुद्रा 130. विद्या मुद्रा 131. जेन्- इन् मुद्रा 132. जु-कौ-इन् मुद्रा।[61]

बौद्ध धर्म की महायान शाखा का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ **आर्य मंजुश्री कल्प** में 108 मुद्राओं का सविधि वर्णन किया गया है। उनमें प्राप्त मुद्राओं के नाम इस प्रकार हैं–[62]

1. पञ्चशिखा मुद्रा 2. त्रिशिखा मुद्रा 3. विन्द्या मुद्रा 4. उत्पल मुद्रा

5. स्वस्तिक मुद्रा 6. ध्वज मुद्रा 7. पूर्ण मुद्रा 8. यष्टि मुद्रा 9. छत्र मुद्रा 10. शक्ति मुद्रा 11. सम्बुद्धा मुद्रा 12. फर मुद्रा 13. गदा मुद्रा 14. खड्ग मुद्रा 15. घण्टा मुद्रा 16. पाश मुद्रा 17. अंकुश मुद्रा 18. भद्रपीठ मुद्रा 19. पीठ मुद्रा 20. मयुर मुद्रा 21. पट्टिश मुद्रा 22. एकलिंग मुद्रा 23. द्विलिंग मुद्रा 24. माला मुद्रा 25. धनु मुद्रा 26. नाराच मुद्रा 27. समलिंग मुद्रा 28. शूल मुद्रा 29. मुद्गर मुद्रा 30. तोमर मुद्रा 31. दक्षिण मुद्रा 32. वक्र मुद्रा 33. पटम् मुद्रा 34. कुम्भ मुद्रा 35. खखर मुद्रा 36. कलश मुद्रा 37. मौशल मुद्रा 38. पर्यंक मुद्रा 39. पटहम मुद्रा 40. धर्मशंख मुद्रा 41. शंकला मुद्रा 42. बहुमता मुद्रा 43. समनोरथा मुद्रा 44. जननी मुद्रा 45. पात्र मुद्रा 46. तोरण मुद्रा 47. सुतोरण मुद्रा 48. घोष मुद्रा 49. जप मुद्रा 50. भेरि मुद्रा 51. धर्मभेरि मुद्रा 52. गज मुद्रा 53. वरहस्त मुद्रा 54. तद्गतचारिणी मुद्रा 55. केतु मुद्रा 56. पर्वत मुद्रा 57. परशु मुद्रा 58. लोक मुद्रा 59. भिण्डिपाल मुद्रा 60. लांगल मुद्रा 61. पद्म मुद्रा 62. वज्र मुद्रा 63. धर्मचक्र मुद्रा 64. पुण्डरीक मुद्रा 65. वरद मुद्रा 66. वध्वा व्रज मुद्रा 67. कुन्त मुद्रा 68. बज्रमण्डल मुद्रा 69. शतघ्न मुद्रा 70. आदा मुद्रा 71. विमान मुद्रा 72. स्यन्दन मुद्रा 73. शयन मुद्रा 74. अर्धचन्द्र मुद्रा 75.अर्धचन्द्र वीणा मुद्रा 76. पद्मालया मुद्रा 77. कुवलय मुद्रा 78. नमस्कार मुद्रा 79. सम्पुट मुद्रा 80. यमल मुद्रा 81. पुष्प मुद्रा 82. वलय मुद्रा 83. धूप मुद्रा 84. गन्ध मुद्रा 85. दीप मुद्रा 86. अक्ष मुद्रा 87. साधन मुद्रा 88. आह्वान मुद्रा 89. विसर्जन मुद्रा 90 पूर्ण मुद्रा 91. चक्रवर्ती मुद्रा 92. सितम मुद्रा 93. मूल मुद्रा 94. धर्मकोश मुद्रा 95. महा मुद्रा 96. भूतशमनी मुद्रा 97. पद्माल मुद्रा 98. सम्प्रयुज मुद्रा

तुलना

बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का एक प्रामाणिक संग्रह इन्साइक्लोपीडिया के रूप में प्रकाशित है। तदनुसार मुद्रा सम्बन्धी ग्रन्थों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि इन मुद्राओं पर कई विद्वानों ने कार्य किया है और यह बात इससे सिद्ध होती है कि कुछ मुद्राओं के उल्लेख एक में तो कुछ के अनेक पुस्तकों में भी मिलते हैं जैसे भगवान बुद्ध की विशिष्ट पाँच मुद्राओं का वर्णन अनेक पुस्तकों में प्राप्त होता है।

बौद्ध मुद्राओं के नाम हिन्दी, संस्कृत, भारतीय, जापानी, तिब्बती आदि

कई भाषाओं में हैं। जैसे सप्तरत्न, अष्ट मंगल, म-म-मडोस् आदि मुद्राओं के नाम संस्कृत में हैं। भारतीय बौद्ध मुद्राओं के नाम हिन्दी में हैं तथा जापानी बौद्ध मुद्राएँ अपने देश की भाषा में हैं।

सप्तरत्न आदि मुद्राओं का प्रयोग किन प्रसंगों में किया जाना चाहिए। इसके स्पष्ट उल्लेख तो नहीं मिले हैं किन्तु गर्भधातु-वज्रधातु मण्डल से सम्बन्धित कई मुद्राओं का प्रयोग देवपूजन-देवार्चन आदि धर्म क्रियाकाण्डों में होता है ऐसा सुस्पष्ट है। भगवान बुद्ध की 40 मुद्राएँ तो उन्हीं की जीवनचर्या से जुड़ी हुई हैं जिसे साधना या उपासना के रूप में प्रयुक्त करें तो अध्यात्म के अन्तिम चरण का स्पर्श किया जा सकता है।

जापानी, चीनी एवं तिब्बती वज्रायन-मंत्रायन सम्बन्धी कुछ मुद्राएँ तान्त्रिक साधना से जुड़ी हुई हैं तो कुछ यौगिक ध्यान साधना से सम्बन्धित भी हैं। कई मुद्राएँ देवी-देवताओं या भगवान के लिए अथवा उनके अभिसूचन में धारण की जाती है। कुछ ऐसी मुद्राएँ भी हैं जो किसी एक देवी-देवता से ही सम्बन्धित है जैसे– धर्मचक्र मुद्रा या वज्र हुंकार मुद्रा। इसी तरह कई मुद्राएं स्वरूपत: मिलती-जुलती होने पर भी अन्य नामों से प्राप्त होती है जैसे कि पताका मुद्रा एवं अभय मुद्रा, नाट्य सम्बन्धी सूची मुद्रा एवं तर्जनी मुद्रा आदि। कई मुद्राओं के नाम समान हैं किन्तु प्रयोगत: भिन्न हैं तथा नाम साम्य वाली मुद्राएँ भिन्न-भिन्न प्रसंगों में भी प्रयुक्त की जाती हैं।

इस तरह सभी मुद्राओं का अपना विशिष्ट ध्येय एवं प्रयोजन हैं।

उपरोक्त सभी मुद्राओं की विधियाँ तत्सम्बन्धी ग्रन्थों में प्राय: समान हैं लेकिन पृथक्-पृथक् देशों में प्रचलित उन मुद्रा नामों में अवश्य भिन्नता है।

प्रस्तुत शोध कृति में जिन मुद्राओं पर विचार किया गया है उपरोक्त सूची में उन्हीं का नाम दिया है इससे स्पष्ट है कि अतिरिक्त और भी मुद्राएँ हैं।

बौद्ध धर्म की महायान शाखा का एक ग्रन्थ आर्यमंजु श्रीकल्प में 108 मुद्राएँ विधिसहित कही गई हैं। जिसका मूलपाठ यहाँ भी प्रस्तुत किया गया है। बौद्ध मुद्राओं में कुछ नाम ऐसे भी हैं जो जैन एवं हिन्दू परम्परा की मुद्राओं में प्राप्त होते हैं जैसे– अंकुश मुद्रा, पाश मुद्रा, मुद्गर मुद्रा, खड्ग मुद्रा, गदा मुद्रा आदि।

योग साधना के लिए मुख्य रूप से उपयोगी मुद्राओं की सूची

1. चिन्मुद्रा 2. चिन्मय मुद्रा 3. उन्मनी मुद्रा 4. भूचरी मुद्रा 5. नासाग्र मुद्रा 6. भैरव मुद्रा 7. नौमुखी मुद्रा 8. अगोचरी मुद्रा 9. योग मुद्रा 10. ब्रह्म मुद्रा 11. आकाशी मुद्रा 12. महा मुद्रा 13. नभो मुद्रा 14. उड्डीयान बन्ध मुद्रा 15. जालन्धर बन्ध मुद्रा 16. मूलबन्ध मुद्रा 17. महाबन्ध मुद्रा 18. महावेध मुद्रा 19. खेचरी मुद्रा 20. विपरीतकरणी मुद्रा 21. योनि मुद्रा 22. वज्रोली मुद्रा 23. शक्तिचालिनी मुद्रा 24. ताडागी मुद्रा 25. मांडुकी मुद्रा 26. शाम्भवी मुद्रा 27. पंच धारणा मुद्रा 28. अश्विनी मुद्रा 29. पाशिनी मुद्रा 30. काकी मुद्रा 31. मातंगिनी मुद्रा 32. भुजंगिनी मुद्रा।[63]

आधुनिक चिकित्सा पद्धति में प्रचलित मुद्राओं की सूची

1. ज्ञान मुद्रा 2. ज्ञान ध्यान मुद्रा 3. ज्ञान वैराग्य मुद्रा 4. अभयज्ञान मुद्रा 5. तत्त्व ज्ञान मुद्रा 6. बोधिसत्त्व ज्ञान मुद्रा 7. पृथ्वी मुद्रा 8. वायु मुद्रा 9. आकाश मुद्रा 10. शून्य मुद्रा 11. आदिति मुद्रा 12. सूर्य मुद्रा 13. वरूण मुद्रा 14. जलोदरनाशक मुद्रा 15. प्राण मुद्रा 16. अपान मुद्रा 17. व्यान मुद्रा 18. उदान मुद्रा 19. समान मुद्रा 20. अपान-वायु मुद्रा 21. किडनी-मूत्राशय मुद्रा 22. लिंग मुद्रा 23. योनि मुद्रा 24. शंख मुद्रा 25. सहज शंख मुद्रा 26. ध्यान मुद्रा 27. बंधक मुद्रा 28. पुस्तक मुद्रा 29. प्रज्वलिनी मुद्रा 30. हार्ट मुद्रा 31. मृगी मुद्रा 32. हंसी मुद्रा 33. सुकरी मुद्रा 34. सुरभि मुद्रा 35. जलसुरभि मुद्रा 36. पृथ्वी सुरभि मुद्रा 37. शून्य सुरभि मुद्रा 38. वायु सुरभि मुद्रा 39. आशीर्वाद मुद्रा 40. नमस्कार मुद्रा 41. पंकज मुद्रा 42. अनुशासन मुद्रा 43. पूर्णज्ञान मुद्रा।[64]

तुलना

यद्यपि जैन, हिन्दू एवं बौद्ध तीनों ही परम्पराओं की अध्यात्म साधना एवं देवोपासना में मुद्रा का महत्त्वपूर्ण स्थान माना गया है, फिर भी मुद्राओं की संख्या आदि को लेकर न केवल विभिन्न परम्पराओं में मतभेद पाया जाता है अपितु एक परम्परा में भी अनेक मान्यताएँ हैं। हिन्दू परम्परा के शारदातिलक (23/107-114) में नौ मुद्राओं का उल्लेख है, तो वहीं ज्ञानार्णवतन्त्र (4/31-47) में तीस से अधिक मुद्राओं का निर्देश किया गया है। विष्णुसंहिता (7) के

अनुसार तो मुद्राएँ अनगिनत हैं। देवीपुराण (11/16/68-102), ब्रह्मपुराण (61-55), नारदीयपुराण (2/57/55-56) आदि अनेक हिन्दू पुराणों और तांत्रिक ग्रन्थों में मुद्राओं के उल्लेख मिलते हैं। बौद्ध परम्परा में भी भिन्न-भिन्न मुद्राओं के उल्लेख प्राप्त होते हैं।

यदि त्रिविध परम्पराओं की पारस्परिक तुलना करें तो जैन एवं बौद्ध सम्बन्धी मुद्रा के नामों और विधियों में लगभग असमानता है। कुछ मुद्राओं में समरूपता भी दिखती है जैसे– अभय मुद्रा, वन्दन मुद्रा, कायोत्सर्ग मुद्रा आदि। इन मुद्राओं के नाम एवं उनकी प्रयोगविधि प्राय: समान है।

जैन एवं हिन्दू सम्बन्धी मुद्राओं में परस्पर साम्य-वैषम्य दोनों हैं।

इस तरह हिन्दू एवं बौद्ध सम्बन्धी मुद्राओं में परस्पर समानता भी है और असमानता भी है। कुछ मुद्राएँ नाम एवं प्रयोग की दृष्टि से बिल्कुल समान हैं। अग्रिम खण्डों में उन मुद्राओं की चर्चा स्वतन्त्र अध्याय के रूप में भी की जाएगी। सामान्यतया बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं के नाम जन साधारण में प्राय: अप्रसिद्ध हैं।

प्रत्येक मुद्रा का प्रयोग अपनी परम्परा के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप में किया जाता है तथा उनके उद्देश्य भी पृथक्-पृथक् हैं।

नाट्य मुद्राएँ, हठयोग आदि मुद्राएँ एवं वर्तमान प्रचलित उपचार सम्बन्धी मुद्राएँ किसी भी धर्म परम्परा से जुड़ी हुई नहीं है क्योंकि नाट्य मुद्राओं का उद्भव मुख्यत: भावों की अभिव्यक्ति एवं नृत्य-नाटकों के अभिनय को दर्शाने के रूप में हुआ, हठयोगादि मुद्राओं का प्रादुर्भाव अध्यात्म साधना को विकासोन्मुख करने के ध्येय से हुआ तथा कई मुद्राएँ उपचार की दृष्टि से प्रचलन में आईं। इसलिए इन मुद्राओं का प्रयोग हर कोई तद्भूत प्रयोजनों से कर सकता है। इनमें परम्परा का व्यामोह बाधक नहीं बनता है।

संदर्भ सूची

1. *(क) नाट्य शास्त्र, 9वाँ अध्याय*
   (ख) द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 26-44
2. *(क) अभिनय दर्पण, श्लोक 89-201*
   (ख) द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 28, 29, 32, 34, 38, 41
3. *द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 31 से 50*

4. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 44-45
5. द मिरर ऑफ गेश्वर, पृ. 46
6. निर्वाणकलिका, पृ. 66-72
7. मुद्राविचारप्रकरण, पृ. 21-24
8. सुबोधासमाचारी, पृ. 1
9. तिलकाचार्यसामाचारी, 1-2
10. विधिमार्गप्रपा, पृ. 114-116
11. परमेष्ठिमयी मुद्रा, मौद्गरी वज्रमुद्रिका
तथा गरूड़ मुद्रा च, जिनमुद्रा तथैव च।
ततो मुक्ता शुक्ति मुद्रा ऽञ्जलिमुद्रा च सौरभी
पद्ममुद्रा चक्र मुद्रा, मुद्रा सौभाग्यनामका ।।
यथाजाता ऽऽरात्रिकी च, वीरमुद्रा विनीतिका।
प्रार्थना पर्शुमुद्रा च, छत्र मुद्रा प्रियंकरी ।।
तथा गणधरी मुद्रा, योगमुद्रा तथैव च।
ततः कच्छप मुद्रा च, धनुःसंधान मुद्रिका ।।
योनि मुद्रा दण्ड मुद्रा, सिंह मुद्रा च शक्तिजा।
शंख पाश खड्ग कुन्त,वृक्ष शाल्मलि मुद्रिका।
दीप कन्दुक मुद्राश्च, मुद्रा नागफणाभिधा।
माला पताका घण्टा च,प्रायश्चित्त विशोधिनी ।।
ज्ञानकल्पलता नाम, मोक्षकल्पलता तथा ।।

आचारदिनकर, भाग 2, पृ. 385

12. जैन धर्म और तान्त्रिक साधना- उद्धृत पृ. 330-333
13. मुद्रा विधि, पृ. 26-35
14. कल्याणकलिका, पृ. 608-619
15. प्रेक्षाध्यान : यौगिक क्रियाएँ, मुनि किशनलाल, पृ. 57-68
16. महामुद्रा नभो मुद्रा उड्डीयानं जलन्धरम्।
मूलबन्धं महाबन्धं, महावेधश्च खेचरी।।
विपरीतकरणी योनि, वज्रोली शक्तिचालिनी।
तडागी माण्डवी मुद्रा, शाम्भवी पंचधारणा।।
अश्विनी पाशिनी काकी, मातंगी भुजंगिनी।
पञ्चविंशति मुद्रावै, सिद्धिदाश्चेह योगिनाम्।।

घेरण्डसंहिता, 3/1-3

17. महामुद्रा महाबन्धो, महावेधश्च खेचरी।
जालन्धरो मूलबन्धो, विपरीत कृतिस्तथा ।।
उड्डानं चैव वज्रोली, दशमं शक्तिचालनम्।
इदं हि मुद्रादशकं, मुद्राणामुत्तमोत्तमम् ।।
शिवसंहिता, 4/25-25

18 कृत्वा सम्पुटितौ करौ, दृढ़तरं बध्वा तु पद्मासनं।
गाढं वक्षसि सन्निधाय, चिबुकं ध्यानं च तच्चेतसि।।
वारंवारमपानमूर्ध्व मनिलं, प्रोच्चारयेत्पूरितं।
मुञ्चन्प्राणमुपैतिबोधमतुलं, शक्ति प्रभावादतः।।
महामुद्रां नभोमुद्रां उड्डीयानं जलन्धरम्।
मूलबन्धश्च यो वेत्ति, सह योगी मुक्ति भाजनः।।
कपाल कुहरे जिह्वा, प्रविष्टा विपरीतगा।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टि, र्मुद्रा भवति खेचरी ।।
ऊर्ध्व नाभिरधस्तालुर्ध्व सूर्यरधः शशी।
करणी विपरीताख्या, गुरुपदेशेन लभ्यते ।।
गोरक्षसंहिता, 1/51, 56, 62, 2/34, 38, 39

19. महामुद्रा महाबंधो, महावेधश्च खेचरी।
उड्यानं मूल बंधश्च, बंधो जालंधरा भिधः।।
करणी विपरीताख्या, वज्रोली शक्तिचालनम् ।
इदं हि मुद्रादशकं, जरामरणनाशनम् ।।
हठयोगप्रदीपिका, 3/6-7

20. महामुद्रा महाबन्धो, महावेधश्च खेचरी।
जालंधरो उड्डियाणश्च, मूलबन्धस्तथैव च ।।
दीर्घप्रणव सन्धानं, सिद्धान्त श्रवणं परम्।
वज्रोली चामरोली च, सहजोली त्रिधामता ।।
योगतत्त्वोपनिषत्, 43 वाँ, श्लो. 26-27

21. महामुद्रा नभोमुद्रा, उड्डीयाणं च जलन्धरम्।
मूलबन्धं च यो वेत्ति, स योगिमुक्ति भाजनम् ।।
भ्रुवोरन्तर्गता दृष्टि, र्मुद्रा भवति खेचरी।
व्रजत्यूर्ध्वं गतः शक्तया, निरूद्धो योनिमुद्रया ।।
योगचूड़ामणि उपनिषत्, 48वाँ श्लो. 45, 52, 59

22. प्रथमो मूलबन्धस्तु, द्वितीयोड्डीयणाभिधः ।
जालन्धरस्तृतीयास्तु, तेषां लक्षणमुच्यतेषां ।। 1/41
अथाहं संप्रवक्ष्यामि विद्यां खेचरीसंज्ञिकाम् ।
..... राजदन्तोर्ध्वकुण्डली, 2/1-49
योगकुण्डल्युपनिषत्, 89वाँ श्लो. 1/41, 2/1-49

23. यन्मूलं सर्व लोकानां, यन्मूलं चित्त बन्धनम् ।
मूलबन्धः सदा सेव्यो, योग्योऽसौ ब्रह्मवादिनाम् ।।
तेजोबिन्दूपनिषत्, 39वाँ 1/27

24. पद्मं शंखश्च श्रीवत्सो, गदा गरूड़ एव च ।
चक्रं खड्गश्च शार्ङ्गं च, अष्टौ मुद्रा प्रकीर्तिताः ।।
ब्रह्मपुराणम्, 61/55

25. काम्येषु च यथोक्तं, स्याद्यथाशक्ति समाहितः ।
पद्मं शंखं च श्रीवत्सं, गदां गरूड़मेव च ।।
चक्रं खड्गं च शार्ङ्गं च, अष्टौ मुद्रा प्रकीर्तिताः ।
गच्छ गच्छ परं स्थानं, पुराण पुरूषोत्तम।।

नारदीयपुराणम्, अनु. तरिणीश झा, 57/55-56 उत्तरभाग

26. सव्यपार्ष्णि गुदे स्थाप्य, दक्षिणं च ध्वजोपरि
योनिमुद्रा बंध एवं, भवेदासनमुत्तमम्, 1/64/62
कृत्वार्कमंडलात्तीर्थान्याह्वयेन्मुष्टिमुद्रया, 1/66/25
गोमुद्रया मृतीकृत्य, कवचेनावगुंठ्य च, 1/66/28
निमज्ज्योन्मज्ज्य त्रिश्चैवं, सिंचेत्कंकुंभमुद्रया, 1/66/34
मूलेन तस्मात् श्चोतद्भिर्बिन्दु भिस्तत्त्वमुद्रया, 1/66/62
गोमुद्रयामृतीकृत्याच्छादयेन्मत्स्य मुद्रया, 1/67/18
शंख मौशलचक्राख्याः, परमीकरणं ततः ।
महामुद्रां योनि मुद्रां, दर्शयेत्क्रमतः सुधीः, 1/67/20
गारूडी गालिनी चैव, मुख्ये मुद्रे प्रकीर्तिते, 1/67/21
पानीयममृतीकृत्य, मुद्रया धेनु संज्ञया, 1/67/95
शैवी षडंगमुद्रात्र, न्यस्तव्या हि षडंगके, 1/68/8

चक्रशंखगदां भोज, पदेषु स्वस्व मुद्रया, 1/70/14
पर्वताग्रे यजेद्देवीं, पलाशकुसुमैर्निशि।
सिद्ध द्रव्यैश्च सप्ताहात्, खेचरी मेलनं भवेत्, 1/90/36

27. वायवीय संहिता, 2/24
28. नारदीयपुराण, 2/57/55-56
29. ब्रह्माण्डपुराण, 61/55
30. मुद्राणां परिसंख्यानं, स्वरूपं च यथाक्रमम्।
धेनुश्च सम्पुटश्चैव, प्राञ्जलिर्बिल्वपद्मकौ ॥25॥
नाराचो मुण्डदण्डौ च, योनिरघ तथैव च।
वन्दनी च महामुद्रा, महायोनिस्तथैव च॥26॥
भगश्च पुटकश्चैव, निषङ्गोथाऽर्धचन्द्रकः।
अङ्कश्च द्विमुखं चैव, शङ्खमुद्रा च मुष्टिकः ॥27॥
वज्रं चैव तथा रन्ध्रं, षड्योनिर्विमलं तथा।
घटः शिखरिणीतुङ्गः पुण्ड्रोऽथ ह्यर्धपुंड्रकः॥28॥
सम्मिलनी च कुण्डश्च, चक्रंशूलं तथैव च।
सिंहवक्त्रं गोमुखं च, प्रोन्नामोन्नमनं तथा॥29॥
बिम्बं पाशुपतं शुद्धं, त्यागोऽथोत्सारिणी तथा।
प्रसारिणी चोग्रमुद्रा, कुण्डलीव्यूह एव च ॥30॥
त्रिमुखा चासिवल्ली च, योगो भेदोऽथ मोहनम्।
बाणो धनुश्च तूणीरं, मुद्रा एताश्च सत्तमाः॥31॥
अष्टोत्तरशतं मुद्रा, ब्रह्मणा याः प्रकीर्तिताः।
तासां तु पञ्चपञ्चाशदेता ग्राह्यस्तु पूजने॥32॥
शेषास्तु यास्त्रिपञ्चाशन्, मुद्रास्ताः समयेषु च।
द्रव्यानयनसंकेत, नटनादिषु ताः स्मृताः॥33॥
देवानां चिन्तने योगे, ध्याने जप्ये विसर्जने।
आद्यास्तु पञ्चपञ्चाशन्, मुद्रा भैरव कीर्तिताः॥34॥
मुद्रां विना तु यज्जप्यं, प्राणायामः सुरार्च्चनम्।
योगो ध्यानासने चापि, निष्फलानि च भैरव॥35॥

कालिकापुराण, 66/25-35

31. संक्षिप्त देवी भागवत अंक, कल्याण पृ. 609
32. स्वच्छन्दतन्त्र, 2/100-102
33. स्वच्छन्दतन्त्र, 14वाँ पटल
34. खेचर्याः परिवारस्तु, अष्टौ मुद्राः प्रकीर्तिताः।
शूलाष्टके च देवेशि, मातृव्यूहे च ताः स्मृताः।।
पद्मं शूलं तथा चक्रं, शक्तिर्दण्डं सवज्रकम्।
दंष्ट्रा कपालमित्येवं, तदशेषं व्यवस्थितम्।।
तन्त्रालोक, संपा. द्विवदी, 32/50-53 की व्याख्या
35. सूपविष्टः पद्मके तु, हस्ताग्राङ्गुलि रश्मिभिः ।
पराङ्मुखै र्झटित्युद्य, द्रश्मिभिः पृष्ठ संस्थितैः ।।
अन्तःस्थितिः खेचरीयं, संकोचाख्या शशाङ्किनी ।
तस्मादेव समुत्तम्ब्य, बाहू चैवावकुंचितौ ।।
सम्यग्व्योमसु संस्थाना, द्रव्योमाख्या खेचरी मता ।
मुष्टिद्वितय संघट्टाद्, धृति सा हृदयाह्वया ।।
शान्ताख्या सा हस्तयुग्म, मूर्ध्वाधः स्थित मुद्गतम्।
समदृष्ट्यावलोक्यं च, बहिर्योजित पाणिकम्।।
एषैव शक्ति मुद्रा चे, दधोधावितपाणिका ।
दशानामङ्गुलीनां तु, मुष्टिबन्धादनन्तरम् ।।
द्राक्क्षेपोत्खेचरी देवी, पंचकुण्डलिनी मता ।
संहारमुद्रा चैषैव, यद्यूर्ध्वं क्षिप्यते किल ।।
उत्क्रामणी झगित्येव, पशूनां पाशकर्तरी ।
श्वभ्रे सुदूरे झटिति, स्वात्मानं पातयन्निव ।।
साहसानु प्रवेशेन, कुञ्चितं हस्त युग्मकम् ।
अधोवीक्षणशीलं च, सम्यग्दृष्टि समन्वितम् ।।
वीरभैरव संज्ञेयं, खेचरी बोधवर्तिनी ।
अष्टधेत्थं वर्णिताश्री, भर्गाष्टक शिखाकुले ।।
तन्त्रालोक, संपा. द्विवेदी, 32/54-62 ।
36. जयाख्यसंहिता, 8/170
37. तन्त्रराजतन्त्र, 4/26-32

38. ज्ञानार्णवतन्त्र, 4/31-47, 4/51-56, 15/47-68
39. चतुर्वर्गचिंतामणि, हेमाद्रि-व्रत भा.-1, पृ. 246-47
40. वीर मित्रोदय, आह्निक प्रकाश तीसरा अध्याय, पृ. 298-99
41. ताश्च आवाहनी स्थापनी संमुखकरणी सन्निरोधनी प्रसाद मुद्रा अवगुण्ठनमुद्रा शंख-चक्र-गदा-पद्म-मुसल-खड्ग-धनुर्बाण-मुद्राः।
वीर मित्रोदय, पूजा प्रकाश, पृ. 136
42. स्मृति चन्द्रिका, पृ. 146-47
43. प्रपंचसार सारसंग्रह, द्वितीय भाग पृ. 464-469
44. नारदीयसंहिता, 6/8-12
45. (क) ए डिक्शनरी ऑफ हिन्दुइज्म, एम एण्ड जे. स्टुट्ले, पृ. 10, 30, 32, 35, 39, 44, 68 78, 70, 102, 110, 113, 114, 153, 160
(ख) आइक्रोनीग्राफी ऑफ द हिन्दूज बुद्धिस्ट एण्ड जैनस्, रमेश एस. गुप्ते, पृ. 63, 3
46. क्रियापाद, 1/6-12
47. (क) शारदातिलकतन्त्र, 23/107-114
(ख) कुलार्णवतन्त्र, 17/90-92
48. शारदातिलकतन्त्र, 13 से 20 अध्याय की टीका
49. प्रपंचसार, पृ. 464-469
50. तान्त्रिक मुद्रा विज्ञान,
51. वीर मित्रोदय, आह्निक प्रकाश (भाग-3), पृ. 298-99
52. *The cult of Tara : Magic and Ritual in Tibet, Wr. Stephen Beyer*
53. वही,
54. वही,
55. (क) *Esoteric Mudras of Japan, Wr. Gauri Devi*
(ख) *Mudras in Japan, Wr. Lokesh Chandra and Sharada Rani*
56. *Mudra a study of symbolic gestures in Japanese Buddhist scalp[ture, Wr. E. Dale Saunders.*
57. *(i)* The monuments of Buddhasmsiam writer Damrong Rajanbhab (Prince)
(ii) The Heritage of Thai sculpture, Wr. Jean Boisselier.

(iii) Pictorial Thain and English Dictionary

(iv) Journal of The siam society The attitudes of the Buddha's, Wr. O. Frunkfurter.

(v) Translations of Thai pang (mudras), Wr. (Phra) Suradej Sutthi

58. *(i) The Gods of Northern Buddhisms, Wr. Alice Getty.*

(ii) The Iconography of Tibetan lamaism, Wr. Antoinetle K. Gordon

(iii) The Indian Buddhist Iconography Mainly based on the seadhatermalea and other cognate Tantric Texts in Rituals, Wr. Benoytosh Bhattacharya.

(iv) Mystic of Ancient Tibet, Wr. Blanche christine Olschak

(v) The Book of Buddhas, Wr. Eva Rudy Jansen

(vi) Mudra : A study of symbolic gestures in Japanese Buddhist sculpture, Wr. E. Dale Saunders

(vii) Esoteric Mudras of Japan, Wr. Gauri Devi

(viii) The Heritage of Thaisculpture, Wr. Jean Boisselier

59. *The cult of Tara : Magic and Ritual in Tibet, Wr. stephen Beyer.*

60. *(i) The Iconography of Tibetan lamaism, Wr. Antoinette K. Gordon*

(ii) Mudra : A study of symbolic gestures in Japanes abuddhist sculpture, Wr. E. Dale Saunders

(iii) Esoteric Mudras of Japan, Wr. Gauri devi

(iv) Mudras in Japan, Wr. Lokesh chandra and sharada Rani

(v) Iconography of Hindus, Buddhists and Jains, Wr. Ramesh S. Gupte

61. *(i) Esoteric Mudras in Japan, Wr. Gauri Devi*

(ii) Mudras in Japan, Wr. Lokesh Chandra and Sharada Rani

62. *श्रृणु कुमार! मञ्जथी! वक्ष्येऽहं पटलमुद्रिताम्।*
आदौ पञ्चशिखा भवति, महामुद्रा तु सा मना।।
त्रिशिखं द्वितीयं विन्द्या, तृतीयं एकचीरकम्।
चतुर्थं उत्पलमित्याहः, सम्बुद्धाः दिपदोत्तमाः।।
पञ्चमः स्वस्तिको दृष्टः, षष्ठो ध्वज उच्यते।
सप्तमं पूर्णमित्याहुः, मन्त्रज्ञानसुशोभनाः।।
अष्टमं यष्टिनिर्दिष्टा, लोकनाथैर्जितारिभिः।
नवमं छत्रनिर्दिष्टं, दशमं शक्तिरूच्यते।।

एकादशं तु सम्बुद्धा, सम्पुटं तु समादिशेत्।
द्वादशं फरमित्युक्तो, त्रयोदशं तु गदस्तथा।
चतुर्दशं खड्गनिर्दिष्टा, घटा पञ्चादशस्तथा।
षोडशः पाशमित्युक्तः, अङ्कुशः सप्तदशः स्मृतः।।
अष्टादशं भद्रपीठं तु, ऊनविंशतिपीठकम्।
विंशन्मयूरासनः प्रोक्तो, एकविंशस्तु पट्टिशम्।।
एकलिङ्गं द्विविंशं तु, द्विलिङ्गो विंशसत्रिकम्।
चतुर्विंशस्तथा माला, पञ्चविंश धनुस्तथा।।
विंशत्षष्टाधिकं प्रोक्तं, नाराचे तु प्रकल्पिता।
सप्ताविंशतिमित्याहुः, समलिङ्गे प्रवर्तिता।।
अष्टाविंशस्तथा शूलः, ऊनविंशश्च मुद्गरः।
तोमरं त्रिंशमित्याहुः एकत्रिंशं तु दक्षिणम्।।
द्वात्रिंशत् तथा वक्रः, त्रयस्त्रिंशत् पदमुच्यते।
चतुस्त्रिंशस्तथा कुम्भः, पञ्चत्रिंशे तु खखरम्।।
कलशं षट्त्रिंशतिः प्रोक्तो, सप्तत्रिंशे तु मौशलम्।
अष्टत्रिंशे तु पर्यङ्कः, ऊनचत्वारिंशत् पटहम्।।
चत्वारिंशतिमित्याहुः, धर्मशङ्खमुद्राहृतम्।
चत्वारिंशं स एकं च, शङ्खला परिकीर्तिता।।
द्वितीया बहुमता प्रोक्ता, तृतीया समनोरथा।
चतुर्त्थी जननी दृष्टा, प्रज्ञापारमिता मिता।।
पञ्चमं पात्रमित्याहुः, सम्बुद्धा द्विपदोत्तमाः।
तोरणं षष्ठमित्युक्तः, सप्तमं तु सुतोरणम्।।
अष्टमं घोपनिर्दिष्टः, जपशब्दो नवमः पुनः।
पञ्चाशद् भेरिमित्युक्ता, धर्मभेरि तु साधिका।।
द्विपञ्चाशद् गजमित्याहुः, वरहस्तत्रिकस्तथा।
चतुःपञ्चाशमिति ज्ञेयं, मुद्रा तद्गतचारिणी।।
पञ्चमं केतुमित्याहुः, षष्ठं चाशशरस्तथा।
सप्तमं परशुनिर्दिष्टं, अष्टमं लोकपूजिता।।
ऊनषष्टिस्तया ज्ञेया, भिण्डिपालं समासतः।
षष्टिश्चैव भवेद्युक्ता, लाङ्गंल तु समासतः।।

एकषष्टिस्ततः पद्मः, द्विमुष्टिः वज्रमुच्यते।
त्रिषष्टिः कथितं लोके, धर्मचक्रं प्रवर्त्तितम्।।
चतुःषष्टिस्तथा ज्ञेयः, पुण्डरीकं समासतः।
पञ्चषष्टिस्तथा विन्द्याद्, वरदं मुद्रमुत्तमम्।।
षट्षष्टि तथा वध्वा, वज्रमुद्रा तु कीर्तिता।
सप्तषष्टिस्तथा लोके, कुन्तमाहुर्मनीषिणः।।
अष्टषष्टिस्तथा कुर्याद्, वज्रमण्डलमुद्राहृतम्।
ऊनसप्ततिमेवं स्यात्, शतघ्नेति प्रकीर्तिता।।
ततः सप्ततिकं विन्द्यान्नादामुद्रं समासतः।
एकसप्ततिमित्याहुर्विमानं मुद्रवरं शुभम्।।
द्विसप्तत्या समासेन, स्यन्दनं स इहोच्यते।
शयनं लोकनाथानां, त्रिसप्तान्या समासतः।।
पञ्चसप्ततिराख्यातश्चतुः सप्ततिकस्तथा।
अर्धचन्द्रं च वीणा च उभौ मुद्रावृदाहृतौ।।
षट्सप्ततिमं लोके, मुद्रा पद्मालया भवेत्।
सप्तसप्ततिमः श्रेष्ठः, मुद्रा कुवलयोद्भवा।।
अष्टसप्ततिमं मुद्रा, नमस्कारेति उदाहृता।
नवमं नवतिसंख्या तु, उभौ मुद्रौ शुभोत्तमौ।।
सम्पुटं यमलमुद्रा च, संख्या नवतिमं भवेत्।
एकनवतिमित्याहुः, पुष्पमुद्रा उदाहृताः।।
द्वितीया वलयमुद्रा तु, तृतीया धूपयेत् सदा।
चतुर्था गन्धमुद्रा तु, पञ्चमी दीपना स्मृता।।
षष्ठया साधनं विन्द्यात्, सप्तम्या आसने स्मृता।
अष्टममाहाननं प्रोक्तं, नवमं तु विसर्जनम्।।
शतपूर्णस्तथा विन्द्यात्, मुद्रां सर्वकर्मिकाम्।
साधिकं शतमित्याहु, र्महामुद्रा इति स्मृताः।।
उष्णीषं लोकनाथानां, चक्रवर्ति सदा गुरोः।
तं मुद्रं प्रथमतः प्रोक्ता, द्वितीया सितमुद्भवा।।
तृतीया मूलमुद्रा तु, मञ्जुघोषस्य दृश्यते।
चतुर्त्थी धर्मकोशस्या, धर्ममुद्रेति लक्ष्यते।।

पञ्चमी सङ्घमित्याहु, र्महामुद्रापि सा भवेत्।
षष्ठी तु भूतशमनी, प्रत्येकार्हमुद्भवा।।
सप्तमी बोधिसत्त्वानां, दशमी तु प्रवेशिनाम्।
मुद्रा पद्ममालेति, महामुद्रां तु तां विदुः।।
वरदा सर्वमुद्राणां, मन्त्राणां च सलौकिकाम्।
महाप्रभावां महाश्रेष्ठां, ज्येष्ठां त्रैलोक्यपूजिताम्।।
अष्टमीं सम्प्रयुञ्जीत, मुद्रा त्रिभुवनालयाम्।
मुद्राणां कथिता संख्या, अस्मिं तन्त्रे महोद्भवा।।
शतमेक तथा चाष्टं, संख्यमुद्रेषु कल्पिता।
एतत्प्रमाणं तु सम्बुद्धैः, पुरा गीतं महीतले।।
निर्नष्टे शासने शास्तुः, प्रचरिष्यति देहिनाम्।
आदौ तावत् करे नयस्त, मुभयाग्रां करे स्थितौ।।
अन्योन्याङ्गुलिमावेष्टय, सन्मिश्रां च पुनस्ततः।
उभौ करौ समायुक्तौ, पञ्चचलासुचिह्नितौ।।

मंजूश्री मूलकल्प, 35 वाँ पटल

63. (क) उद्धृत– तंत्र, क्रिया और योगविद्या, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
    (ख) सम्पूर्ण योग विद्या, ले. राजीव जैन त्रिलोक
64. (क) मुद्रा विज्ञान, नीलम संघवी
    (ख) हस्त मुद्रा प्रयोग और परिणाम, मुनि किशनलाल
    (ग) मुद्रा विज्ञान ए वे ऑफ लाईफ, केशव देव

●

अध्याय-5

उपसंहार

मुद्रा मुनष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है और यह व्यक्ति के मन, वाणी और काया के द्वारा व्यक्त होती है। इसकी अभिव्यक्ति में शरीर प्रमुख रूप से कार्यशील रहता है तथा शरीर की क्रियाशीलता में जो भी भाव प्रदर्शित होता है वही मुद्रा है।

मुद्रा अर्थात एक्शन। हमारे शरीर के जितने भी एक्शन (कार्य) हैं सभी मुद्राएँ कही जा सकती हैं। मुद्रा एक ऐसा माध्यम है जिससे किसी भी तरह के भावों को मूक रूप में भी स्पष्ट कह सकते हैं। व्यक्ति के अपने भावों के अनुरूप हाथ, मुख, भृकुटि आदि के जो एक्शन होते हैं उनका आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ता है। लौकिक जगत में इस तरह के बहुत से उदाहरण देखे जा सकते हैं जैसे कोई हमें कुपित दृष्टि से देखें या क्रोध का भाव दिखायें तो हम भी उसी तरह का व्यवहार कर बैठते हैं, यदि कोई टेढ़ी नजरों से देखता है तो हमारे मनस पटल पर भी वैसे ही भाव उभर आते हैं, यदि हमें कोई देखकर प्रसन्न होता है तो हम भी प्रसन्नता से भर उठते हैं। इसी भाँति प्रेमिल दृष्टि, घृणित विचार, हास्यवार्त्ताएँ, अपनत्व अनुभूति, संवेदनशीलता आदि प्रवृत्तियों का चेतना स्तर पर यथावत प्रभाव पड़ता है। उच्चस्तरीय साधकों को हमारे विचार या हमारी क्रियाएँ प्रभावित न कर सकें, वह अलग बात है लेकिन सामान्य व्यक्ति हाव-भाव से तुरन्त प्रभावित होता है।

कहा भी गया है "जैसे भाव वैसी मुद्रा, जैसी मुद्रा वैसे भाव"

अर्थात शरीर की विभिन्न आकृतियों (मुद्राओं)का चेतन मन के साथ अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस तरह के भाव होते हैं उसी तरह की मुद्राएँ बन जाती है और जिस तरह की मुद्राएँ होती है उस तरह के भाव प्रकट हो जाते हैं। स्पष्ट है कि मानव की सहज प्रवृत्ति मुद्रा है।

संस्कृत कोश के अनुसार मोहर, छाप, सिक्का (कोइन्स), पैसा (करन्सी)

को मुद्रा कहा जाता है। अर्थशास्त्र के अनुसार कागज के नोट को भी मुद्रा माना जाता है। वहाँ उसका अर्थ करन्सी ग्रहण किया गया है। नोट को मुद्रा बनाने का एक कारण यह भी है कि वह राजमुद्रा से प्रमाणीकृत होता है। किसी अधिकारी की सील अथवा पद मुद्रा को भी मुद्रा कहा जाता है, क्योंकि उसकी छाप संबंधित अधिकारी का प्रमाणीकरण माना जाता है। प्राचीनकाल से राज मुद्रांकित लेख को ही प्रमाण माना जाता रहा है।

मुद्रा का एक अर्थ छाप है इसलिए मुद्रित का अर्थ छापा हुआ होता है। आजकल अंग्रेजी में जिसे सील कहते हैं उसे पूर्वकाल में मुद्रिका कहा जाता था। आधुनिक युग में सील को ग्रहण करने के लिए काठ की मूठ लगी रहती है, प्राचीन युग में उस स्थान पर अधिक सुरक्षा की दृष्टि से मुद्रिका को अंगुली में पहना जाता था। अनामिका अंगुली में मुद्रा धारण करने का सम्बन्ध उपासना परम्परा से भी रहा है।

पोस्ट ऑफिस का सारा कार्य मुद्रा के बल पर ही चलता है। शासकीय कार्यालयों के सभी महत्त्वपूर्ण अभिलेखों के आदेशों का पालन इसी मुद्रा के कारण होता है। उक्त कथितांश से यह सिद्ध होता है कि लोक व्यवहार में मुद्रा किसी भी लेख को अथवा विनिमय के साधन को प्रमाणित करने का मुख्य आधार है।

मुद्रा का एक अर्थ मूंदना भी होता है जैसे "दृष्ट का मुखमुद्रण करना ही अच्छा है"इस तरह के वाक्यों में इसका प्रयोग किया जाता है।

मुद्रा का अर्थ छापना भी होता है इसीलिए मुद्राओं के प्रयोग के द्वारा मनस पटल पर देवशक्ति की अमिट छाप पड़ने का भाव समाविष्ट है।

योगिनीतन्त्र में गेहूँ, चने, चावल आदि भुनकर जो चबाया जा सकें, उन्हें मुद्रा कहा गया है।

नृत्य आदि अभिनय में अंगों के संचालन विशेष की क्रिया को मुद्रा कहा गया है। यद्यपि भाव-भंगिमा को दर्शाने के लिए यह अंग संचालन विश्व के सभी सभ्य, असभ्य एवं अर्धसभ्य समाजों में प्रचलित है किन्तु इसका सूक्ष्म और रहस्य गर्भित वर्णन तद्युगीन कृतियों में उपलब्ध होता है। आज के फूहड़ अंग प्रदर्शन के स्थान पर यदि सिनेमा जगत के कलाकारों को उन भाव प्रकाशन की सूक्ष्म मुद्राओं का ज्ञान कराया जा सकें तो दर्शकों पर कहीं अधिक स्थायी और स्वस्थ प्रभाव डाला जा सकता है।

यह खासकर स्मरणीय है कि अंग-संकेत मानव की आदि भाषा है। देशकाल के अनुसार यह भाषा वाणी की अपेक्षा कम ही परिवर्तित होती है। किसी को मुँह बनाकर चिढ़ाने की मुद्रा अथवा क्रोध की उग्र मुद्रा संसार के किसी भी क्षेत्र में सभ्य-असभ्य किसी भी व्यक्ति को समान रूप से ही प्रभावित करती है। दूरस्थ व्यक्ति को हाथ से बुलाने का संकेत, भूख प्रकट करने के लिए ग्रास मुद्रा और प्यास के लिये मुख के पास अर्धअंजलि मुद्रा बनाने से दो विभिन्न भाषा-भाषी अपने मन के भाव बोधगम्य बना सकते हैं। जहाँ भाषा की भिन्नता के कारण वाणी भाव सम्प्रेषण में असमर्थ होती है वहाँ मुद्रा के संकेत बहुउपयोगी सिद्ध होते हैं अर्थात शरीर के हाव-भाव मनोव्यंजना को सुस्पष्ट रूप से अभिव्यक्त कर देते हैं। इससे निर्णीत होता है कि वचन प्रयोग की अपेक्षा मुद्रा में भावसम्प्रेषण की क्षमता कहीं अधिक व्यापक, सार्वदेशिक और सार्वजनीन है।

यह ध्यातव्य है कि भारतीय परम्परा में प्रत्येक शब्द के साथ उसकी आत्मा पर विचार किया जाता है। शब्द यद्यपि संकेत ही होता है फिर भी वह अपने निकटतम भाव का स्पर्श करता है। अत: साधना पद्धति में आकृति (पोज) को मुद्रा कहा गया है। हमारे भावों के अभिरूप भिन्न-भिन्न आकृतियाँ निर्मित होती है और वह उस-उस प्रकार के भावों को समझने-समझाने का सशक्त माध्यम बनती है। सामान्यत: शरीर के ऊपर अभिव्यक्त होने वाली समस्त आकृतियों को ही मुद्रा कहा जाता है किन्तु हम अज्ञानावरण के कारण समस्त भावों को पकड़ नहीं पाते, इसलिए शरीर द्वारा स्थूल रूप से निर्मित होने वाली विशिष्ट आकृतियों को मुद्रा कहा जाना चाहिए।

तान्त्रिक साधना में मुद्रा का अर्थ है प्रसन्नता। मुद्रा शब्द "मुद् मोदने" धातु से निष्पन्न है। मोदन अर्थात प्रसन्न करना। जो देवताओं को प्रसन्न कर देती है अथवा जिसे देखकर देवता प्रसन्न होते हैं उसे तन्त्रशास्त्र में मुद्रा कहा गया है। यद्यपि तन्त्रशास्त्र में भी मुद्रा के अनेक अर्थ प्रचलित हैं उनमें निम्न चार अर्थ मुख्य हैं– हठयोग के प्रसंग में मुद्रा का अर्थ है एक विशिष्ट प्रकार का आसन, जिसमें सम्पूर्ण शरीर क्रियाशील रहता है। पूजा के प्रसंग में मुद्रा का अर्थ हाथ और अंगुलियों से बनायी गई वे विशेष आकृतियाँ हैं, जिन्हें देखकर देवता प्रसन्न मग्न होते हैं। जैन और वैष्णव तन्त्रों में मुद्रा का यही अर्थ अभिप्रेत है। तंत्र

की सात्त्विक परम्परा में घृत से संयुक्त भुने हुए अन्न को भी मुद्रा कहा गया है यह मुद्रा का तीसरा अर्थ है। वाममार्गी तान्त्रिकों की दृष्टि से मुद्रा का अर्थ वह नारी है जिससे तान्त्रिक योगी अपने को सम्बन्धित करता है- यह मुद्रा का चौथा अर्थ है। पंचमकारों में मुद्रा इसी अर्थ में ग्रहीत है किन्तु जैनों को मुद्रा का यह अर्थ कभी भी मान्य नहीं रहा है वह तो मुद्रा के उपरोक्त दूसरे अर्थ को ही स्वीकार करती है।

अभिधानराजेन्द्रकोश में हाथ आदि अंगों के विन्यास विशेष को मुद्रा कहा गया है और उसके अन्तर्गत निम्न तीन मुद्राओं के नामों का उल्लेख किया है 1. योग मुद्रा 2. जिन मुद्रा और 3. मुक्ताशुक्ति मुद्रा। जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश में देववन्दना, ध्यान या सामायिक करते समय मुख एवं शरीर के विभिन्न अंगों की जो आकृतियाँ बनाई जाती है उसे मुद्रा कहा गया है।

इस तरह हम देखते हैं कि मुद्रा शब्द विविध अर्थों का बोध कराता है। यहाँ मुद्रा से अभिप्राय प्रसन्नता, अन्तर अभिव्यक्ति, अंगों का विन्यास विशेष, सदनुष्ठान में निमित्त भूत शरीर के विभिन्न अंगों की आकृतियाँ आदि है। मुद्रा के उपरोक्त अर्थ ही उपासना आदि में कार्यकारी होते हैं तथा इन्हीं भावों से किया गया मुद्रा प्रयोग मुद्रा साधना की संज्ञा को प्राप्त होता है।

यहाँ यह प्रश्न सहज उठता है कि हमारे जीवन में मुद्रायोग की आवश्यकता क्यों? आपने ध्यानपूर्वक पढ़ा होगा कि मुद्रा, पराविद्याओं की एक महत्त्वपूर्ण विद्या है। इस विद्या की खोज भारतीय ऋषि-महर्षियों ने की है। दूसरा मानव शरीर प्रकृति की सर्वोत्तम एवं महत्त्वपूर्ण कृति है। इस शरीर रूपी भवन में समग्र सुविधाएँ उपलब्ध हैं। इसमें कूलर, हीटर, एयरकंडीशन से लेकर विद्युत, रेडियो, केमरा, कम्प्यूटर आदि सर्व शक्तियाँ व्याप्त है। भारतीय योगियों ने संपूर्ण शरीर का सूक्ष्म अन्वेषण कर मानव देह के कितने ही रहस्यों को प्रकट किया है। सामान्य मान्यतानुसार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एवं हमारा शरीर पंच तत्त्वों के संयोग से निर्मित है। आधुनिक रसायन विज्ञान ने यद्यपि इन तत्वों को 106 से भी अधिक तत्त्वों में विभाजित कर दिया है किन्तु मुख्यत: पाँच ही हैं।

इन पाँच तत्त्वों की विकृति के कारण ही बाह्य प्रकृति में उपद्रव और शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं। जब मानव शरीर में पांच तत्त्वों की स्थिति सम रहती है तो शरीर स्वस्थ रहता है किन्तु जब तात्त्विक स्थिति विषम हो जाती है तो हम

बीमार हो जाते हैं। मुद्रा योग से विश्व एवं शरीर दोनों को सन्तुलित रखा जा सकता है।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि शरीर की स्वस्थता के आधार पर ही मन और चेतना स्वस्थ रह सकते हैं। मुद्रायें शरीर, मन और चेतना तीनों को प्रभावित करती हैं। अत: स्पष्ट होता है कि मुद्रा साधना से समस्त प्रकृति को संतुलित रखते हुए उसे अनावश्यक उपद्रवों से बचाया जा सकता है तथा वैश्विक शान्ति और शारीरिक स्वस्थता का अनुभव कर सकते हैं।

दूसरा प्रश्न होता है कि मुद्रा के द्वारा पंच तत्त्वों को संतुलित कैसे किया जा सकता है? इस सम्बन्ध में इतना तो स्पष्ट है कि मानव शरीर पंच तत्त्वों से बना है। इस शरीर में हाथ सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है। प्रकृति ने पांचों तत्त्वों के नियन्त्रण की सत्ता हाथों को दी है यानि पाँच तत्त्वों का प्रतिनिधित्व पाँचों अंगुलियाँ करती हैं उन अंगुलियों की सहायता से तत्त्वों को घटा-बढ़ाकर संतुलित किया जा सकता है।

मुद्रा विज्ञान के अनुसार प्रत्येक अंगुली से अलग-अलग प्रकार का विद्युत् प्रवाह नि:सृत होता है। उच्चतम साधना के द्वारा उस शक्ति प्रवाह को बढ़ाया भी जा सकता है और उससे अच्छे-बुरे, शुभ-अशुभ प्रभाव भी देखे जा सकते हैं।

नियमत: हस्तमुद्राओं के माध्यम से अंगुलियों को मिलाने, दबाने, स्पर्श करने, मरोड़ने तथा कुछ समय तक विशेष आकृति बनाये रखने से तत्त्वों में परिवर्तन होता है। जैसे किसी भी अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के अग्रभाग से मिलाने पर बढ़ा हुआ तत्त्व संतुलित हो जाता है। इसी तरह अंगूठे के अग्रभाग को किसी भी अंगुली के मूल भाग से स्पर्शित करने पर उस अंगुली तत्त्व की शरीर में अभिवृद्धि होती है। इसी तरह किसी भी अंगुली के अग्रभाग को अंगूठे के मूल भाग (निचले हिस्से) से संयुक्त करने पर उस अंगुली तत्त्व का शरीर में ह्रास होता है। इस भाँति अंगुलियों के द्वारा शरीर में पंच तत्त्व को घटाने-बढ़ाने का साधारण नियम है।

वस्तुतया आंतरिक भावों का शारीरिक या मानसिक अभिव्यक्तिकरण मुद्रा है। सामान्य तौर पर मानव की सहज-असहज, आवश्यक-अनावश्यक जितनी भी शारीरिक प्रवृत्तियाँ (पोज) हैं। उन सभी को मुद्रा संज्ञा प्राप्त है जैसे– आसनों की संख्या असीमित है वैसे ही मुद्राओं की संख्या भी अनगिनत है। अध्ययन की

दृष्टि से समस्त मुद्राओं को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं 1. नाट्य मुद्राएँ 2. योग मुद्राएँ, 3. पूजोपासना संबंधी मुद्राएँ और 4. कलात्मक मुद्राएँ।

1. नाट्य परम्परा की मुद्राएँ–

युग के आदिकाल में संकेत आदि के रूप में एवं नाट्य-नृत्य आदि के रूप में प्रयुक्त मुद्राएँ इस श्रेणी की मुद्राएँ भरतमुनि रचित नाट्य शास्त्र, विष्णुधर्मोत्तर पुराण, अभिनव दर्पण, संगीतरत्नाकर, नृत्यरत्न कोश, समरांगण सूत्रधार आदि ग्रन्थों में प्राप्त होती हैं।

2. यौगिक परम्परा की मुद्राएँ–

भारतीय ऋषि-महर्षियों द्वारा उपदिष्ट एवं आचरित मुद्राएँ, जैसे– हठयोग सम्बन्धी और मुद्रा विज्ञान तत्त्व योग सम्बन्धी मुद्राएँ यौगिक मुद्राएँ कहलाती हैं। इस विषयक मुद्राएँ योग चूड़ामणि उपनिषत्, योग तत्त्वोपनिषत्, हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, शिव संहिता, गोरक्ष संहिता, नारदीय पुराण, ब्रह्म पुराण आदि में उपलब्ध होती हैं।

3. पूजोपासना परम्परा की मुद्राएँ–

वीतराग पुरुष, आप्त पुरुष अथवा देवी-देवताओं की आराधना निमित्त दर्शायी जाने वाली मुद्राएँ तीसरी श्रेणी में आती हैं। इस विषयक मुद्राएँ जैन, हिन्दू एवं बौद्ध तीनों परम्पराओं में प्राप्त होती हैं।

4. कला परम्परा की मुद्राएँ–

भारतीय शिल्पकला एवं मूर्तिकला में अंकित मुद्राएँ जैसे मोहनजोदड़ों, खजुराहो, सिन्धु घाटी की सभ्यता, मथुराकला, गुप्तकला, मौर्यकला, कुषाणकला, साँची स्तूप, उदयगिरि-खण्डगिरि शिल्प आदि के अवशेषों में दर्शित मुद्राएँ कला परम्परा की मुद्राएँ कही जाती है। इसके अतिरिक्त अनभ्यास सम्बन्धी, अभ्यास सम्बन्धी, अभ्यास-अनभ्यास सम्बन्धी, संस्कार सम्बन्धी, तन्त्र प्रधान सम्बन्धी आदि मुद्रा योग के अनेक प्रकार हैं।

यदि धार्मिक परम्पराओं की अपेक्षा विचार करें तो कहा जा सकता है कि मुद्रा योग की प्रणाली हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म में अल्पाधिक रूप से आज भी विद्यमान है। इतना ही नहीं, मुस्लिम नमाज पढ़ते समय लगभग नौ मुद्राओं का प्रयोग करते हैं। यवन और ईसाई धर्म के अनुयायी विशेष अवसरों पर अपने

मुखमंडल और हृदय के आस-पास अंगुलियों के द्वारा एक विशेष प्रकार से हवा में cross बनाते हैं। रोम में ईसा की कुछ मूर्तियाँ ज्ञान मुद्रा में उपलब्ध है। पारसी आदि कई धर्मों के अनुयायी साधारण रूप से प्रार्थना के समय दोनों हाथों का विशेष प्रयोग करते हैं। वहाँ पूजा के दौरान हाथ की अंगुलियों द्वारा शरीर के विभिन्न अंगों का विशेष रूप से स्पर्शन, दर्शन और मुखमार्जन भी किया जाता है।

यदि मुद्रा योग की मूल्यवत्ता के सम्बन्ध में कुछ कहा जाए तो यह है कि इस योग के द्वारा मानव शरीर में स्थूल और सूक्ष्म सम्पूर्ण स्नायु मण्डल को शान्त किया जा सकता है तथा मन की शान्त स्थिति द्वारा अनन्त शक्तियाँ प्राप्त की जा सकती है। यदि मन शान्त न हो तो योग और अध्यात्म की साधना में प्रवेश भी नहीं हो सकता।

अल्प रुचि रखने वालों को कदाच यह भ्रम हो सकता है कि योग चिकित्सा तुरन्त असरकारक नहीं होती अथवा योग साधना में शीघ्र प्रभाव दिखाने वाली क्रियाओं का अभाव है परन्तु ऐसा नहीं है। क्योंकि इंजेक्शन से भी शीघ्र अपना प्रभाव दर्शाने वाली कई महत्त्वपूर्ण क्रियाएँ मुद्रा योग में मौजूद हैं, किन्तु आधुनिक युग में हमारे भारतीय तत्त्ववेत्ताओं एवं वैज्ञानिकों ने इस सम्बन्ध में शोध कार्य करना न्यून कर दिया है। यदि ध्यान दें तो बहुत सी योग मुद्राएँ कुछ रोगों पर इंजेक्शन की भाँति ही कार्य करती हैं। उदाहरण के तौर पर शून्य मुद्रा के द्वारा कान के दर्द को कुछ ही मिनट में दूर किया जा सकता है। अपान मुद्रा से मूत्र सम्बन्धी रोगों को, वायु मुद्रा और अपान मुद्रा का युगपद् प्रयोग कर हृदय रोग को सौरबीटेट टेबलेट की भाँति तुरन्त ठीक कर सकते हैं। जबड़ा फस जाए तो अंगूठा और मध्यमा अंगुली से चुटकी बजाने पर फसा जबड़ा तत्काल खुल जाता है। इसी तरह प्राण मुद्रा द्वारा चक्षु रोगों से तुरन्त राहत पा सकते हैं।

साधना की दृष्टि से मुद्राओं के द्वारा बौद्धिक और मानसिक शक्तियाँ उपलब्ध होती है। मुद्राओं के निरन्तर अभ्यास द्वारा समाज, देश और विश्व में चिर शान्ति की स्थापना की जा सकती है, लोगों की विकृत चेष्टाओं को बदला जा सकता है, विचार और कर्म में भी परिवर्तन हो सकता है। वस्तुत: मुद्राएँ मानव शरीर की कुंजी है।

भगवान महावीर, भगवान बुद्ध आदि कई महापुरुषों ने इस विद्या को अपनाया ही नहीं, प्रत्युत इसे आत्मसात कर जन्म-मरण की परम्परा का भी विच्छेद कर दिया। इससे स्पष्ट होता है कि मुद्रा विज्ञान प्राचीन भारतीय ऋषियों की एक विचित्र खोज है तथा आधुनिक विज्ञान की अणु धारा से भी अधिक सूक्ष्म, गहन, सारगर्भित एवं विस्तृत है। प्राचीन शास्त्रों के विधानानुसार तो यह मानव पिंड के प्रत्येक सूक्ष्म रहस्य को स्पष्ट और प्रत्यक्ष करने का सरल साधन हैं। इस विज्ञान विधि के द्वारा वैश्विक जगत् में ऐसे विचित्र परिवर्तन किए जा सकते हैं जो आधुनिक विज्ञान के लिए सर्वथा असम्भव है। आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान तो प्राकृतिक सिद्धान्तों की ओर ध्यान ही नहीं देता, जबकि भारतीय संस्कृति प्रकृति से तादात्म्य रखने में विश्वास करती है क्योंकि वह तो चर-अचर जगत का आधार है। इस तरह मुद्रा योग का महत्त्व इसलिए भी है कि उसके मूल में प्रकृति का आधार है। जहाँ प्रकृति हो वहीं वास्तविकता और तात्त्विकता का पुट रहता है।

●

सहायक ग्रन्थ सूची

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
1.	अभिधान चिन्तामणि	संपा. विजयकस्तूरसूरि	सरस्वती पुस्तक भंडार, अहमदाबाद	वि.सं. 2013
2.	आचारदिनकर (भा.1-2)	आचार्य वर्धमानसूरि	निर्णयसागर मुद्रालय, मुंबई	1922
3.	आसन, प्राणायाम, मुद्राबन्ध	–	बिहार योग विद्यालय, मुंगेर	1986
4.	कल्याणकलिका (भा.1)	कल्याणविजय गणि	श्री. क.वि. शास्त्र संग्रह समिति, जालोर	1956
5.	कालिकापुराणम्	संपा. विश्वनारायण शास्त्री	चौखम्बा संस्कृत सीरिज ऑफिस, वाराणसी	1972
6.	कुलार्णवतन्त्र	संपा. डॉ. सुधाकर मालवीय	चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी	2006
7.	गीता	महर्षि वेद व्यास	अच्युत ग्रन्थमाला कार्यालय, काशी	वि.सं. 1998
8.	गोरक्ष संहिता	संपा. डॉ. चमनलाल गौतम	संस्कृति संस्थान, बरेली	2005
9.	घेरण्ड संहिता	संपा. डॉ. चमनलाल गौतम	संस्कृति संस्थान, बरेली	1992
10.	छान्दोग्योपनिषत्	–	गीता प्रेस, गोरखपुर	वि.सं. 2023
11.	जयेन्द्र योग प्रयोग	डॉ. रमेश कुमार	मेघ प्रकाशन, दिल्ली	1982
12.	जैन धर्म और तांत्रिक साधना	डॉ. सागरमल जैन	पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी	1997

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
13.	तत्त्वोपनिषद् (उपनिषद् संग्रह)	–	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	1980
14.	तन्त्रराजतन्त्र	संपा.आर्थर एवलोन	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	
15.	तंत्र क्रिया और योग विद्या	स्वामी सत्यानन्द सरस्वती	बिहार योग विद्यालय, मुंगेर	1993
16.	तन्त्रलोक (भा.1-8)	संपा. डॉ. द्विवेदी	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	1918
17.	तन्त्रालोक में कर्मकाण्ड	डॉ. बीना अग्रवाल संपा. सूर्यप्रकाश व्यास	प्रशांत प्रकाशन, वाराणसी	1996
18.	तन्त्रालोक (व्याख्यासहित भा.1-4)	संपा. परमहंस मिश्र	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी	—
19.	तान्त्रिक मुद्रा विज्ञान	पं. राजेश दीक्षित	दीप पब्लिकेशन, आगरा	
20.	तेजोबिन्दूपनिषत्	पं. जगदीश शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	
21.	The Mirror of Gesture	Coomaraswamy	Anand Kentish Munshiram Manoharlal Publishers, New Delhi	2003
22.	देवी भागवत (ख.2)	श्री रामशर्मा आचार्य	संस्कृति संस्थान, बरेली	—
23.	नाट्यशास्त्र	भरतमुनि	भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली	1983
24.	निर्वाण कलिका	आचार्य पादलिप्त	निर्णयसागर मुद्रालय, मुंबई	1926

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
25.	प्रपंचसार सार संग्रह (भा. 2)	गीर्वाणे सरस्वती	—	1980
26.	प्रेक्षाध्ययन : यौगिक क्रियाएँ	मुनि किशनलाल	जैन विश्व भारती, लाडनूं	2006
27.	मुद्रा विज्ञान	पं. रजनीकांत उपाध्याय	डायमण्ड पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली	2000
28.	मुद्रा विज्ञान	नीलम संघवी	501, अरिहंत बिल्डिंग, अंधेरी (वेस्ट)	2000
29.	योगिनी हृदय	संपा.श्री गोपीनाथ कविराज	वाराणसी संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी	
30.	योगचूडामणिउपनिषत्	संपा. पं. जगदीश शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	1980
31.	योगकुण्डल्युपनिषद्	संपा. पं. जगदीश शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	1980
32.	योगशिखोपनिषद्	संपा. जगदीश शास्त्री	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	1980
33.	वराहोपनिषद् (उपनिषद् संग्रह)	—	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	1980
34.	विधिमार्गप्रपा	आचार्य जिनप्रभसूरि	प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर	
35.	विधिमार्गप्रपा	अनु.साध्वी सौम्यगुणाश्री	महावीर स्वामी देरासर, पायधुनी, मुंबई	2006
36.	व्याकरण सिद्धान्त कौमुदी	—	चौखम्भा संस्कृत सीरिज, काशी	1980

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
37.	शब्द कल्पद्रुम	—	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	1961
38.	शारदातिलक	संपा. आर्थर एवलोन	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	—
39.	शिव संहिता	रायबहादुर	सत्गुरु प्रकाशन एस. एस.पी.	1981
40.	शिवसूत्रवार्त्तिक	ले. भास्कर संपा. जगदीशचन्द्र चटर्जी	द रिसर्च डिपार्टमेन्ट जम्बू एण्ड कश्मीर, श्रीनगर	1916
41.	शिव संहिता	अनु. अजय कुमार उत्तम	भारतीय विद्या संस्थान, वाराणसी	2001
42.	स्मृतिचन्द्रिका देवणभट्टोपाध्याय विरचित संपा.एल श्री निवासाचार्य	—	नाग प्रकाशक, दिल्ली	1988
43.	स्वच्छन्दतन्त्र	माहेश्वराचार्य क्षेमराज	सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी	—
44.	सम्पूर्ण योग विद्या	राजीव जैन	मंजुल पब्लिशींग हाऊस 10, निशात कॉलोनी, भोपाल	2008
45.	संस्कृत हिन्दी कोश	वामन शिवराम आप्टे	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	1966
46.	संगीत रत्नाकर	संपा. एस. शास्त्री	अड्यार, मद्रास	1953
47.	सामाचारी	तिलकाचार्य रचित	सेठ डाह्याभाई मोकमचंद, पांजरापोल, अहमदाबाद	वि.स. 1990

क्र.	ग्रन्थ का नाम	लेखक/संपादक	प्रकाशक	वर्ष
48.	सुबोधा समाचारी	श्रीमत् चन्द्राचार्य	देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फंड, मुंबई	1924
49.	हस्तमुद्रा प्रयोग और परिणाम	मुनि किशनलाल	जैन विश्व भारती, लाडनूं	2001
50.	हठयोग प्रदीपिका	रामयोगीन्द्र	वेंकटेश्वर स्टीम प्रेस, मुंबई	—
51.	हिन्दी शब्द सागर	—	नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी	—
52.	ज्ञानार्णव तन्त्र	अनु. पन्नालाल बाकलीवाल	राजचन्द्र आश्रम, आगास	1961

●

सज्जनमणि ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित साहित्य का संक्षिप्त सूची पत्र

क्र.	नाम	ले./संपा./अनु.	मूल्य
1.	सज्जन जिन वन्दन विधि	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
2.	सज्जन सद्ज्ञान प्रवेशिका	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
3.	सज्जन पूजामृत (पूजा संग्रह)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
4.	सज्जन वंदनामृत (नवपद आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
5.	सज्जन अर्चनामृत (बीसस्थानक तप विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
6.	सज्जन आराधनामृत (नव्वाणु यात्रा विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
7.	सज्जन ज्ञान विधि	साध्वी प्रियदर्शनाश्री	सदुपयोग
		साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
8.	पंच प्रतिक्रमण सूत्र	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
9.	तप से सज्जन बने विचक्षण	साध्वी मणिप्रभाश्री	सदुपयोग
	(चातुर्मासिक पर्व एवं तप आराधना विधि)	साध्वी शशिप्रभाश्री	सदुपयोग
10.	मणिमंथन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
11.	सज्जन सद्ज्ञान सुधा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
12.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
13.	सज्जन गीत गुंजन (अप्राप्य)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
14.	दर्पण विशेषांक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
15.	विधिमार्गप्रपा (सानुवाद)	साध्वी सौम्यगुणाश्री	सदुपयोग
16.	जैन विधि-विधानों के तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन का शोध प्रबन्ध सार	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
17.	जैन विधि विधान सम्बन्धी साहित्य का बृहद् इतिहास	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
18.	जैन गृहस्थ के सोलह संस्कारों का तुलनात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
19.	जैन गृहस्थ के व्रतारोपण सम्बन्धी संस्कारों का प्रासंगिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
20.	जैन मुनि के व्रतारोपण सम्बन्धी विधि-विधानों की त्रैकालिक उपयोगिता, नव्ययुग के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
21.	जैन मुनि की आचार संहिता का सर्वाङ्गीण अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00

22.	जैन मुनि की आहार संहिता का समीक्षात्मक अध्ययन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
23.	पदारोहण सम्बन्धी विधियों की मौलिकता, आधुनिक परिप्रेक्ष्य में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
24.	आगम अध्ययन की मौलिक विधि का शास्त्रीय अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
25.	तप साधना विधि का प्रासंगिक अनुशीलन, आगमों से अब तक	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
26.	प्रायश्चित्त विधि का शास्त्रीय पर्यवेक्षण व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
27.	षडावश्यक की उपादेयता, भौतिक एवं आध्यात्मिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
28.	प्रतिक्रमण, एक रहस्यमयी योग साधना	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
29.	पूजा विधि के रहस्यों की मूल्यवत्ता, मनोविज्ञान एवं अध्यात्म के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
30.	प्रतिष्ठा विधि का मौलिक विवेचन आधुनिक संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	200.00
31.	मुद्रा योग एक अनुसंधान संस्कृति के आलोक में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
32.	नाट्य मुद्राओं का मनोवैज्ञानिक अनुशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
33.	जैन मुद्रा योग की वैज्ञानिक एवं आधुनिक समीक्षा	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
34.	हिन्दू मुद्राओं की उपयोगिता, चिकित्सा एवं साधना के संदर्भ में	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
35.	बौद्ध परम्परा में प्रचलित मुद्राओं का रहस्यात्मक परिशीलन	साध्वी सौम्यगुणाश्री	150.00
36.	यौगिक मुद्राएँ, मानसिक शान्ति का एक सफल प्रयोग	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
37.	आधुनिक चिकित्सा में मुद्रा प्रयोग क्यों, कब और कैसे?	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00
38.	सज्जन तप प्रवेशिका	साध्वी सौम्यगुणाश्री	100.00
39.	शंका नवि चित्त धरिए	साध्वी सौम्यगुणाश्री	50.00

विधि संशोधिका का अणु परिचय

डॉ. साध्वी सौम्यगुणा श्रीजी (D.Lit.)

नाम	:	नारंगी उर्फ निशा
माता-पिता	:	विमलादेवी केसरीचंद छाजेड
जन्म	:	श्रावण वदि अष्टमी, सन् 1971 गढ़ सिवाना
दीक्षा	:	वैशाख सुदी छट्ठ, सन् 1983, गढ़ सिवाना
दीक्षा नाम	:	सौम्यगुणा श्री
दीक्षा गुरु	:	प्रवर्त्तिनी महोदया प. पू. सज्जनमणि श्रीजी म. सा.
शिक्षा गुरु	:	संघरत्ना प. पू. शशिप्रभा श्रीजी म. सा.
अध्ययन	:	जैन दर्शन में आचार्य, विधिमार्गप्रपा ग्रन्थ पर Ph.D. कल्पसूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नंदीसूत्र आदि आगम कंठस्थ, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, गुजराती, राजस्थानी भाषाओं का सम्यक् ज्ञान।
रचित, अनुवादित एवं सम्पादित साहित्य	:	तीर्थंकर चरित्र, सद्ज्ञानसुधा, मणिमंथन, अनुवाद-विधिमार्गप्रपा, पर्युषण प्रवचन, तत्वज्ञान प्रवेशिका, सज्जन गीत गुंजन (भाग : १-२)
विचरण	:	राजस्थान, गुजरात, बंगाल, बिहार, मध्यप्रदेश, उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, तमिलनाडु, थलीप्रदेश, आंध्रप्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, महाराष्ट्र, मालवा, मेवाड़।
विशिष्टता	:	सौम्य स्वभावी, मितभाषी, कोकिल कंठी, सरस्वती की कृपापात्री, स्वाध्याय निमग्ना, गुरु निश्रारत।
तपाराधना	:	श्रेणीतप, मासक्षमण, चत्तारि अट्ठ दस दोय, ग्यारह, अट्ठाई बीसस्थानक, नवपद ओली, वर्धमान ओली, पखवासा, डेढ़ मासी, दो मासी आदि अनेक तप।

सज्जन पुरूषों की अमृत लहरियाँ

- मुद्रा योग एक वैज्ञानिक साधना कैसे?
- वर्तमान युग में मुद्रा योग कितना प्रासंगिक और महत्वपूर्ण?
- हाथ में पाँच ही अंगुलियाँ क्यों?
- मुद्रा, आसन, प्राणायाम एवं ध्यान आदि साधनाएँ एक है या अलग-अलग?
- जानिए विश्व भर में प्रचलित विविध मुद्राएँ ?
- कैसे करें आध्यात्मिक उत्थान मुद्रा योग के द्वारा ?
- मुद्रा योग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि?

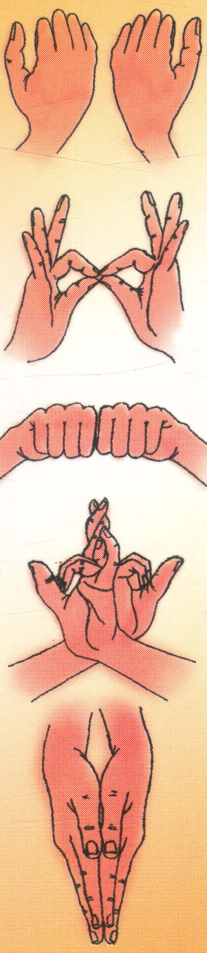

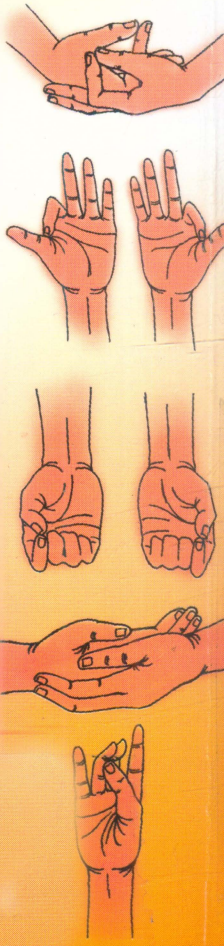

SAJJANMANI GRANTHMALA
Website : www.jainsajjanmani.com,E-mail : vidhiprabha@gmail.com
ISBN 978-81-910801-6-2 (XV)